पाइयपडिबिंबो

मुनि विमल कुमार

तेरापंथ धर्मसंघ में साहित्य की स्रोतस्विनी अनेक धाराओं में प्रवहमान रही है। राजस्थानी भाषा में साहित्य सृजन की परम्परा आचार्य भिक्षु के समय से ही बहुत समृद्ध रही है। हिन्दी साहित्य का सृजन भी प्रगति पर है। संस्कृत साहित्य की धारा सूखी नहीं है। गद्य–पद्य दोनों विधाओं में साहित्य लिखा गया है, पर वह सीमित है। प्राकृत भाषा हमारे यहां अध्ययन–स्वाध्याय की दृष्टि से प्रमुख भाषा के रूप में स्वीकृत है। किन्तु इसमें बोलने और लिखने की गति मन्द रही है।

प्राकृत भाषा पढ़ना एक बात है, उसमें लिखना सरल काम नहीं है। पद्य लिखना तो और भी कठिन है। शिष्य मुनि विमल ने संस्कृत के साथ प्राकृत का भी अच्छा अध्ययन किया। 'पाइयपडिबिंबो' में ललियंगचरियं आदि तीन पद्यात्मक कृतियों का संग्रह है। प्राकृत सीखने वाले विद्यार्थियों और प्राकृत रसिक पाठकों के लिए इसकी उपयोगित निर्विवाद है।

—गणाधिपति तुलसी

पाइयपडिबिंबो

मुनि विमलकुमार

प्रकाशक : जैन विश्व भारती, जैन विश्वभारती संस्थान, लाडनूं (राज०)

© जैन विश्व भारती, लाडनूं

स्वर्गीय श्री छगनलालजी, भंवरलालजी, श्रीमती आचीबाई लूणिया
की पुण्य स्मृति में नगराज, डालचन्द, विजयसिंह राजेन्द्रकुमार
एवं प्रेमकुमार लूणिया तारानगर (कलकत्ता) के
आर्थिक सौजन्य से प्रकाशित।

प्रथम संस्करण : १९९६

मूल्य : 250 रु.

मुद्रक : मित्र परिषद्, कलकत्ता के आर्थिक सौजन्य से स्थापित जैन विश्व भारती प्रेस, लाडनूं-३४१३०६

समप्पणं

जेहिं पसत्थो विहिओ पहो मे,
जेहिं य मज्झं य कयो विगासो ।
तेसिं य पाएसु य भत्तिपुव्वं,
अप्पेमि अप्पं य इणं य कव्वं ।।

आशीर्वचन

तेरापन्थ धर्मसंघ में साहित्य की स्रोतस्विनी अनेक धाराओं में प्रवहमान रही है। राजस्थानी भाषा में साहित्य-सृजन की परम्परा आचार्य भिक्षु के समय से ही बहुत समृद्ध रही है। हिन्दी साहित्य का सृजन भी प्रगति पर है। संस्कृत साहित्य की धारा सूखी नहीं है। गद्य और पद्य—दोनों विधाओं में साहित्य लिखा गया है, पर वह सीमित है। प्राकृत भाषा हमारे यहां अध्ययन-स्वाध्याय की दृष्टि से प्रमुख भाषा के रूप में स्वीकृत है। किन्तु इसमें बोलने और लिखने की गति बहुत मन्द रही है।

सन् १९५४ के बम्बई प्रवास में विदेशी विद्वान् डा० ब्राउन मिलने आए। उस दिन संस्कृत गोष्ठी में अनेक साधु-साध्वियों के वक्तव्य हुए। डा० ब्राउन ने कहा—'मैंने अंग्रेजी, हिन्दी और संस्कृत में भाषण सुने हैं। मैं प्राकृत भाषा में सुनना चाहता हूं।' उसी समय मुनि नथमलजी (आचार्य महाप्रज्ञ) ने प्राकृत में धाराप्रवाह भाषण दिया। डा० ब्राउन को बहुत प्रसन्नता हुई। वे बोले—'आज मेरा चिरपालित सपना साकार हो गया।' एक विदेशी विद्वान् की प्राकृत में इतनी अभिरूचि देख मैंने साधु-साध्वियों को इस क्षेत्र में गति करने की प्रेरणा दी। प्रेरणा का असर हुआ। अनेक साधु-साध्वियों ने प्राकृत में विकास करना प्रारम्भ कर दिया।

प्राकृत भाषा पढ़ना एक बात है, उसमें लिखना सरल काम नहीं है। पद्य लिखना तो और भी कठिन है। शिष्य मुनि विमल ने संस्कृत के साथ प्राकृत का भी अच्छा अध्ययन किया है। मुनि विमल में अध्ययन-मनन की रुचि है, लग्न है, ग्राह्यबुद्धि है। पूरे श्रम से हर एक कार्य करता है। इसी का परिणाम है यह कृति 'पाइयपडिबिंबो'। 'पाइयपडिबिंबो' में उसकी ललियंगचरियं आदि तीन पद्यात्मक कृतियों का संग्रह है। प्रस्तुत कृति की रचनाओं में साहित्यिक लालित्य कम हो सकता है, पर प्राकृत सीखने वाले विद्यार्थियों और प्राकृतरसिक पाठकों के लिए इसकी उपयोगिता निर्विवाद है। मुनि विमल इस दिशा में अधिक गति करे और अपनी साहित्यिक प्रतिभा को निखारे, यही शुभाशंसा है।

गणाधिपति तुलसी

जैन विश्व भारती
लाडनूं (राजस्थान)
१३ अप्रैल १९९६

पाथेय

प्राकृत भाषा देव भाषा या दिव्य भाषा है। यह कहना कम मूल्यवान् नहीं होगा कि वह जनभाषा है। वह जन भाषा है इसलिए आज भी जीवित भाषा है। कुछ रूपान्तर के साथ बृहत्तर भारत के बड़े भाग में बोली जाती है। उसका मौलिक रूप आज व्यवहार भाषा का रूप नहीं है फिर भी अनेक भाषाओं और बोलियों का उद्गमस्रोत होने के कारण उसका अध्ययन और प्रयोग कम अर्थ वाला नहीं है। एक जैन मुनि के लिए उसकी सार्थकता सदैव बनी रहेगी।

मुनि विमलकुमारजी अध्ययनशील और रचनाकुशल हैं। कुछ वर्ष पूर्व 'पाइयसंगहो' नामक एक संग्रह ग्रंथ का संपादन किया था। अभी वर्तमान में उनकी दो प्राकृतनिबद्ध कृतियां सामने प्रस्तुत हैं—पाइयपडिबिंबो और पाइयपच्चूसो। प्रस्तुत कृति 'पाइयपडिबिंबो' में तीन काव्य हैं—ललियंगचरियं, देवदत्ता और सुबाहुचरियं।

भाषा का प्रयोग सहज, सरल और वार्ता-प्रसंग हृदयहारी है। काव्य सौंदर्य के लिए जिस व्यञ्जना की अपेक्षा है, उसकी संपूर्ति नहीं है फिर भी पाठक के मन को आकृष्ट करने वाली सामग्री इसमें अवश्य है। जैन साहित्य की कथाओं के आधार पर लिखित ये प्राकृत काव्य प्राचीन परम्परा की एक कड़ी के रूप में मान्यता प्राप्त करेंगे। मुनिजी ने वर्तमान युग में प्राकृत भाषा में काव्य लिखने का जो साहस किया है, उसके लिए साधुवाद देय है। यश से काव्य लिखा जाता है किन्तु यश से निरपेक्ष होकर केवल अन्त:सुखाय लिखने की प्रवृत्ति बहुत मूल्यवान् है। तेरापंथ धर्मसंघ में आज भी प्राकृत और संस्कृत जीवंत भाषा है। उसके अध्ययन, अध्यापन और रचना का प्रयोग अविच्छिन्न रूप में चालू है। पूज्य कालूगणी ने विद्याराधना का जो संकल्प बीज बोया, गुरुदेव श्री तुलसी ने जिसका संवर्धन किया, जो अंकुरण से पुष्पित और फलित अवस्था तक पहुंचा, वह आज और अधिक विकास की दिशाएं खोज रहा है। यह हमारे धर्मसंघ के लिए उल्लासपूर्ण गौरव की बात है। उस गौरव की अनुभूति में मुनि विमलकुमारजी की सहभागिता उपादेय बनी रहेगी।

जैन विश्व भारती
लाडनूं (राजस्थान)
७ अप्रैल, १९९६

आचार्य महाप्रज्ञ

शुभाशंसा

संस्कृत और प्राकृत प्राचीन भाषाएं हैं। इनमें बहुमूल्य साहित्य भी प्राप्त होता है। जैन आगम प्राकृतभाषा में ग्रथित हैं। उनका व्याख्या-साहित्य भी कुछ प्राकृत भाषा में है। संस्कृत भाषा में भी वह विपुल मात्रा में है। आज भी पूज्य गुरुदेव श्री तुलसी और आचार्य महाप्रज्ञ के नेतृत्व में हमारे धर्मसंघ में साहित्य का निर्माण हो रहा है।

मुनिश्री विमलकुमारजी संस्कृत और प्राकृत भाषा के विज्ञ सन्त हैं। जैन आगमों के सम्पादन आदि कार्यों के साथ भी वे वर्तमान में जुड़े हुए हैं। पहले भी इनकी कई पुस्तकें सामने आई हैं। प्रस्तुत कृति 'पाइयपडिबिंबो' मुनिश्री के तीन प्राकृत काव्यों से संवलित एक ग्रन्थ है। यह ग्रन्थ प्राकृत के विद्यार्थियों और प्राकृत पाठकों के लिए उपयोगितापूर्ण सिद्ध हो। लेखक और नए-नए ग्रन्थों का निर्माण करते रहें, अपनी प्रतिभा का उपयोग करते रहें।

जैन विश्व भारती
१ अप्रैल १९९६, महावीर जयन्ती

महाश्रमण मुनि मुदितकुमार

स्वकथ्य

विक्रम संवत् २०३२ का चातुर्मासिक प्रवास करने जब मैं ग्वालियर (मध्यप्रदेश) की ओर प्रस्थान कर रहा था तब गणाधिपति पूज्य गुरुदेव श्री तुलसी ने मुझे प्राकृत भाषा के विशेष अध्ययन की ओर प्रेरित किया। उस समय तक मेरा प्राकृत भाषा में महज प्रवेश मात्र था, गहन अध्ययन की अपेक्षा थी। गुरुदेव की प्रेरणा से मैंने इस दिशा में कदम रखे। संगोगवश ग्वालियर दो चातुर्मास हुए। उस समय अध्ययन का क्रम चलता रहा।

काव्य प्रेरणा

वि. सं. २०३४ का चातुर्मासिक प्रवास जोधपुर करने के लिए गुरुदेव ने मुझे मुनि श्री ताराचन्दजी के साथ भेजा। हम लोग जोधपुर की ओर जा रहे थे। मार्ग में मैं प्रतिदिन प्राकृत भाषा में एक या दो श्लोक बनाता और मुनि श्री को दिखला देता। एक दिन मुनिश्री ने मुझे प्रेरणा देते हुए कहा—तुम प्रतिदिन प्राकृत भाषा में श्लोक तो बनाते ही हो, यदि किसी कथानक का आधार लेकर बनाओ तो सहज ही काव्य का निर्माण हो जायेगा। मुनिश्री की प्रेरणा मेरे अन्तःकरण में लग गई। मैंने किसी ऐतिहासिक कथानक को ही आधार बनाकर श्लोक रचना करने का विचार किया। उस समय मेरे पास दो ऐतिहासिक कथानक लिखे हुऐ थे—ललितांग कुमार और बंकचूल। मैंने सर्वप्रथम ललितांगकुमार के ही कथानक को आधार बनाया और श्लोक रचना प्रारम्भ कर दी। मैं जितने भी श्लोक बनाता उन्हें मुनि श्री को दिखला देता। मुनिश्री को भी मेरी रचना पसंद आ गई। इस प्रकार ललियंगचरियं का निर्माण हो गया। यह मेरी प्राकृत भाषा में सर्वप्रथम रचना है।

मुनिश्री की वह अन्तःप्रेरणा अनेक वर्षों तक मुझे काव्य-निर्माण की ओर प्रेरित करती रही और वर्तमान में भी कर रही है। जिसके फलस्वरूप ललियंगचरियं, बंकचूलचरियं, देवदत्ता, सुबाहुचरियं, पएसीचरियं मियापुत्त-चरियं आदि पद्य काव्यों का निर्माण हुआ।

कृति परिचय

प्रस्तुत कृति 'पाइयपडिबिंबो' में मेरे तीन काव्यों का समावेश है—ललियंगचरियं, देवदत्ता और सुबाहुचरियं।

ललियंगचरियं—यह प्राचीन ऐतिहासिक कथानक पर आधारित

चरित्र काव्य है। इसका आधार जैन कथाएं हैं। इसके चार सर्ग हैं। प्रत्येक सर्ग भिन्न-भिन्न छंदों में आबद्ध है। इस काव्य की रचना वि. सं. २०३४ जोधपुर में हुई। इसके दो सर्ग गांडीव पत्रिका (जो संस्कृत पत्रिका है और बनारस से प्रकाशित होती है) में प्रकाशित हुए थे।

देवदत्ता—यह काव्य जैन आगम 'विवागसुयं' के प्रथम श्रुतस्कंध के नौवें अध्ययन के आधार पर रचित है। इसके पांच सर्ग हैं। प्रत्येक सर्ग भिन्न-भिन्न छंदों में आबद्ध है। इसकी रचना विक्रम संवत् २०३६ लाडनूं में हुई।

सुबाहुचरियं—यह काव्य जैन आगम 'विवागसुयं' के द्वितीय श्रुत-स्कंध के प्रथम अध्ययन के आधार पर रचित है। इसके तीन सर्ग है। प्रत्येक सर्ग भिन्न-भिन्न छन्दों में आबद्ध है। इसकी रचना वि. सं. २०३९ सरदारशहर में हुई।

इन तीनों काव्यों का हिन्दी अनुवाद स्वयं मैंने ही किया है। प्रत्येक काव्य में समागत कठिन शब्दों का अर्थ तथा हेमचन्द्राचार्य कृत प्राकृत व्याकरण के सूत्रों का प्रमाण भी पाद-टिप्पण में दे दिया गया है जिससे विद्यार्थियों का व्याकरण विषयक ज्ञान भी सुदृढ बनें। कहीं-कहीं प्रयुक्त शब्दों के प्रमाण के लिए महाकवि धनपाल विरचित 'पाइयलच्छी नाममाला' का भी उद्धरण दिया गया है। प्राकृत व्याकरण का संकेत चिह्न है—प्रा. व्या.।

गणाधिपति पूज्य गुरुदेव श्री तुलसी तथा आचार्य श्री महाप्रज्ञ के प्रति मैं किन शब्दों में आभार व्यक्त करूं, उनकी मंगल सन्निधि, प्रेरणा और मार्गदर्शन मुझे सतत गतिशील बनाये रखता है।

इन काव्यों के निरीक्षण में मुनिश्री दुलहराजजी तथा डॉ. सत्यरंजन बनर्जी—प्रोफेसर, कलकत्ता विश्वविद्यालय का मुझे मार्गदर्शन और सहयोग मिला अतः मैं उनके प्रति कृतज्ञता प्रकट करता हूं। डॉ. सत्यरंजन बनर्जी ने मेरी दोनों पुस्तकों 'पाइयपच्चूसो और पाइयपडिबिम्बो' की भूमिका एक साथ ही लिखी है। अतः उसे दोनों पुस्तकों में दिया गया है।

इन काव्यों की प्रतिलिपि करने में मुझे मुनि श्रेयांसकुमारजी का सहयोग मिला। अतः उनके प्रति मैं अपनी मंगल भावना व्यक्त करता हूं।

मुनि श्री नवरत्नमलजी, सुमेरमलजी 'सुदर्शन', ताराचंदजी, हीरालालजी तथा धर्मरुचिजी का भी मैं आभारी हूं जिनका सहयोग मुझे मिलता रहा।

मुनि विमलकुमार

जैन विश्व भारती
लाडनूं (राज०)
६ अप्रैल, १९९६

पुरोवाक्

मुनि विमलकुमारजी प्रणीत दो प्राकृत काव्य—'पाइयपच्चूसो और पाइयपडिबिंबो' मैंने पढ़ा है। इसे पढ करके मुझे बहुत हर्ष हुआ। मैं इसलिए आनन्दित हूं कि बीसवीं शताब्दी के अन्तिम भाग में एक जैन मुनि द्वारा लिखित दो प्राकृत काव्य प्राकृत साहित्य में अलंकारस्वरूप होगा। जैसे पुराने जमाने में मुनि लोग लिखते थे वैसे विमलकुमारजी ने भी लिखा है। इसलिए मैं मुनिश्री की प्रशंसा करता हूं। इस काव्य ग्रन्थ को पढ़ने से ऐसा प्रतीत होता है कि वही हजारों साल पहलेवाला काव्य पढ रहा हूं। अतः हम सभी कृतज्ञ हैं मुनिश्री के। आशा करता हूं कि भविष्य में भी आप ऐसा काव्य ग्रन्थ लिख कर प्राकृत साहित्य को समृद्ध करेगें।

इन दो प्राकृत काव्य ग्रन्थों में छह आख्यान हैं। ये सभी आख्यान प्राकृत और जैन साहित्य के उपजीवी हैं अर्थात् जैन धर्म और अनुशासन में यह आख्यान भाग बहुउपयोगी है। अतः मुनि विमलकुमारजी को मैं हार्दिक धन्यवाद देता हूं।

पाइयपच्चूसो में तीन आख्यान हैं—

(१) बंकचूलचरियं

(२) पएसीचरियं

(३) मियापुत्तचरियं

ये तीनों आख्यान जैन साहित्य में प्रसिद्ध हैं। 'बंकचूल चरियं' नौ सर्गों में समाप्त हुआ है। आख्यान भाग बहुत ही प्रसिद्ध है, अतः आख्यान भाग देने की जरूरत नहीं है। लेकिन इसका वैशिष्टच ऐसा है जो आजकल के काव्य और प्राकृत काव्य में दिखाई नहीं देता। मुनिश्री ने जिस छंद में उल्लिखित हुआ है उसका भी उल्लेख किया है। जैसे—आर्या और इन्द्रवज्रा आदि। और भी एक विशेषता है मुनिश्री ने बीच-बीच में प्राकृत सूत्रों का उल्लेख कर किस प्राकृत शब्द को कैसे बनाया है वह भी पाद टीका में दिया है। इसलिए ये काव्य प्राकृत भाषा सीखने के लिए बहुत मूल्यवान् हो गये हैं। केवल आख्यान भाग नहीं अपितु प्राकृत भाषा का भी ज्ञान होगा। इसके साथ-साथ में हिन्दी अनुवाद भी दिया है। इसलिए ये काव्य एक स्वयं शिक्षक पाठमाला की तरह काम करेगें अर्थात् बिना शिक्षक के ये काव्य पढ़कर आदमी लोग प्राकृत भाषा में ज्ञान लाभ कर सकते हैं।

दूसरा आख्यान भाग है पएसीचरियं। यह काव्य चार सर्ग में समाप्त हुआ है। इसका भी मूल प्राकृत और हिन्दी अनुवाद मुनिश्री ने किया है। बंकचूलचरियं की तरह इसकी भी पादटीका में प्राकृत सूत्र का उल्लेख कर पदसाधन किया है। यह कथा काव्य भी जैन कथा काव्य में प्रसिद्ध है।

पाइयपच्चूसो का अन्तिम भाग है मियापुत्तचरियं। यह भी तीन सर्ग में समाप्त हुआ है। इसमें मूल काव्य प्राकृत भाषा में है। इसका भी हिन्दी अनुवाद हुआ है। मियापुत्तचरियं आगम साहित्य में अति प्रसिद्ध है, परन्तु मुनिश्री ने इसकी रचना शैली ऐसी बनाई है कि यह नया काव्य बन गया है। कहानी में नाम सादृश्य है लेकिन रचना में कलाकौशल अलग है। इसलिए विमलकुमारजी का 'मियापुत्तचरियं' एक अपूर्व काव्य है।

द्वितीय काव्य ग्रन्थ 'पाइयपडिबिंबो' में भी तीन आख्यान हैं। यथा–ललियंगचरियं, देवदत्ताचरियं और सुबाहुचरियं। ये तीनों आख्यान भाग भी जैन साहित्य में प्रसिद्ध हैं। नाम सादृश्य से ऐसा प्रतीत होना नहीं चाहिए कि विमलमुनि का अपूर्व कलाकौशल इसमें उपलब्ध नहीं होता परन्तु पुराने आख्यायिका से आख्यान भाग लेने पर भी इनमें कलाकौशल, वर्णन-माधुर्य, शब्द चयन और वचन ऐसा पांडित्यपूर्ण है कि पुराने काव्य ग्रन्थ से भी इनकी रचना अधिक मधुरिमा युक्त है।

ललियंगचरियं चार पर्व में समाप्त है। मूल के साथ इसका भी हिन्दी अनुवाद किया गया है। वैसे देवदत्ता चरियं भी पांच सर्ग में हिन्दी अनुवाद के साथ लिपिबद्ध है। सुबाहुचरियं तीन पर्व में समाप्त है। इसका भी हिन्दी अनुवाद है।

इन तीनों प्राकृत काव्यों में पाइयपच्चूसो की तरह टिप्पणी में प्राकृत सूत्रों का उल्लेख पूर्वक पदसाधन किया गया है। मेरी ऐसी आशा है कि इन दो काव्य ग्रन्थों में जो छह आख्यान भाग हैं वह प्राकृत भाषा सीखने के लिए बहुत उपयोगी होगा। इसका कारण यही है कि मुनिश्री की भाषा सरल, स्निग्ध और मधुर है। कठिन शब्दों से परिपूर्ण नहीं है और ज्यादा से ज्यादा समासबद्ध शब्द भी नहीं है। यद्यपि यह आधुनिककालीन रचना है तथापि पढने पर मालूम होता है कि ये पुराने जमाने की रचना है। कवित्व-शक्ति मुनिश्री में बहुत है। बीच-बीच में प्रवचन की तरह काफी सूक्तियों का प्रयोग किया गया है।

बीसवीं शताब्दी में प्राकृत भाषा में ऐसा एक महत्त्वपूर्ण आखयान काव्य लिखना बहुत ही कठिन है। विमलमुनि ने इस वस्तु को सरल कर दिया है। इनकी एक काव्यदृष्टि है। पढने पर मालूम होता है कि इसका जो छन्द है उसमें काफी लालित्य है। चरित्रचित्रण में इनकी

अच्छी पकड़ है। काव्य सुधा अवर्णनीय है। मैं केवल यही कह सकता हूं हूं विमलमुनि की प्रतिभा असाधारण है। काव्य रचना भी अपूर्व है।

जैन मुनि लोग कहानियां रचने में बहुत ही पारदर्शी हैं। महावीर के समय से (छट्ठी शताब्दी ईसापूर्व) यह धारा प्रवाहित हो रही है। जैन आगम ग्रन्थों में उनकी जो टीका है उसमें और प्रबंधादिजातीयकोष ग्रन्थ में ऐसा बहुत बौद्ध साहित्य और कहानियां हैं जिसे पढ़कर हम लोगों को बहुत हर्ष होता है। केवल जैनियों में नहीं अपितु संस्कृत और बौद्ध साहित्य में भी बहुत आख्यान मंजरी है। विमलमुनि के इन छह आख्यान पढने से मालूम होता है कि यही धारा प्राचीन काल से अभी तक चल रही है। इसलिए संक्षेप में इसका परिचय देना प्रासंगिक मालूम होता है।

संस्कृत साहित्य तथा प्राचीन भारतीय साहित्य कथानक मंजरी से समृद्ध है। यथा—पूरुरवाउर्वर्शी, ययमी, विश्वमित्र-सत्द्रु-विपाशा आदि बहुत कहानियों से हम परिचित हैं। विविध कथा प्रसंगों में वैदिक ब्राह्मण साहित्य में भी बहुत कहानियां हैं। किंपुरुष, वित्रासुर, शुनः शेफ इत्यादि आख्यायिकाओं से हम लोग सुपरिचित हैं। शतपथ ब्राह्मण की मनुमत्स्यकथा विश्वप्रसिद्ध है। इसके अतिरिक्त रामायण, महाभारत, पुराण आदि ग्रन्थों में भी छोटी-छोटी कहानियां हैं जो आज भी बहुत उपादेय हैं। मंधाता, यमाती, धुन्धुमार, नल, नहुष आदि कहानियां भारतीय साहित्य में अमर हैं। केवल संस्कृत साहित्य ही नहीं बल्कि बौद्ध और जैन साहित्य में भी कथानक मंजरी सुप्रसिद्ध है। पाली भाषा में जातक अथवा जातकट्ठकहा और बुद्ध संस्कृत में महावस्तु, ललित विस्तर, जातक माला, दिव्यावदान आदि ग्रन्थ आख्यान मंजरी से समृद्ध हैं।

जैनियों में भी आख्यान मंजरी बहुत ही उपलब्ध है। जैन आगम ग्रन्थ में, उनकी जो टीका है उसमें, जैन धर्म को विशद करने के लिए बहुत कहानियों की अवतारणा की गई है। हर्मन याकोबी ने उत्तराध्ययन की टीकाओं में जो आख्यायिका है उसका संकलन करके प्रकाशित किया है। (Selected narratives in Maharastri Lipzig, 1886) इसका Meyor साहब ने Hindu Tales नाम करके English अनुवाद किया है।

ऊपर लिखित आख्यायिका केवल प्रासंगिक है अर्थात् धार्मिक विषय को स्पष्टीकरणार्थ आख्यायिका की अवतारणा की गई है। इसी प्रसंग में ये सब कहानियां रचित हुई हैं। किन्तु बाद में संस्कृत, प्राकृत और पाली भाषा में हिन्दु, जैन और बौद्धों ने बहुत ही कहानियों की रचना की है। पंचतंत्र अथवा हितोपदेश बहुत ही प्रसिद्ध हैं। ये दोनों तो विदेशी भाषाओं में अनु-वादित भी हुए हैं। इसके अलावा शुकसप्तति, वेतालपंचविंशति, विक्रमचरित्र,

चतुरवर्गचिंतामणि, पुष्पपरीक्षा, भोजप्रबंध, उत्तमकुमार चरित्र कथा, चंपक-श्रेष्ठीकथा, पालगोपालकथा, सम्यक्त्व कौमुदी इत्यादि आख्यान ग्रन्थ संस्कृत तथा विश्वसाहित्य में सुप्रसिद्ध हैं। पैशाची भाषा में लिखित अधुनालुप्त गुणाढ्य की वृहत्कथा ग्रन्थ का सार अवलम्बन करके बुद्धस्वामी ने वृहत्-कथा श्लोक संग्रह की रचना की है। इसके बाद क्षेमेन्दवृहद्कथामंजरी एवं सोमदेव का कथासरित् रचित हुआ था। कथासंग्रह साहित्य में मेरुतुंग का प्रबंधचिंतामणि (१३०६ AD), राजरामेश्वरसूरी का प्रबंधकोष (१३४० AD) उल्लेख योग्य है। इसके अलावा जैनियों ने कथानक साहित्य का सृजन किया है। इस तरह साहित्य का मूल उद्योक्ता जैन सम्प्रदाय है।

कथानक शब्द का अर्थ छोटी कहानियों का पिटारा है। कथा का आनक अर्थात् पेटिका है। यद्यपि कथानक शब्द साहित्य में सुप्रचलित है, तथापि अलंकारियों ने साहित्य के विभाजन के रूप में इसका उल्लेख नहीं किया है। किन्तु अग्निपुराण (३३७.२०) में गद्य साहित्य का विभाजन रूप से कथानिका, परिकहा और खण्ड कथा का उल्लेख है। आनन्दवर्धन धन्या-लोक (३. ७) में उपर्युक्त विभाजन के साथ सरल कथा करके और भी एक विभाजन किया गया है। अभिनवगुप्त की टीका में इसकी विशद व्याख्या की गई है। लेकिन जैनियों ने जो कथानक साहित्य की सृष्टि की है वह तो संपूर्ण अलग तरह की है। मूलतः संग्रह के रूप से कथानक शब्द का व्यवहार किया गया है।

जैनियों ने संस्कृत, प्राकृत और अपभ्रंश भाषा में गद्य और पद्य में बहुत ही कहानियां, आख्यान और उपाख्यान लिपिबद्ध करके भारतीय साहित्य को समृद्ध किया है। केवल संस्कृत और प्राकृत भाषा ही नहीं बल्कि आधुनिक प्रान्तीय भारतीय भाषा में भी इसका एक अभावनीय संकलन दृष्ट होता है। इसलिए प्राचीन गुजराती, राजस्थानी और हिन्दी में बहुत ही कथानक आख्यायिका का समावेश है। केवल भारतीय आर्यभाषा में ही नहीं अपितु प्राचीन तमिल, कन्नड, तेलगु, मलयालम इत्यादि भाषा में भी बहुत ही जैन कहानियां मिलती हैं। इस प्रकार के साहित्य को संक्षेप में लोक-साहित्य भी बोल सकते हैं। साधारणतया इस सब साहित्य का रचना काल त्रयोदश शताब्दी से शुरू हुआ है। गद्य और पद्य इस किस्म की कहानियों के वाहन हैं।

अभी तक हम लोग यह मानते हैं—जैनियों के बीच में सबसे जन-प्रिय प्राचीन साहित्य है—कालकाचार्य कथानक। इस काव्य के रचयिता और किस समय में लिखा हुआ है, यह हम लोगों को अभी तक मालूम नहीं है। साधारणतः कल्पसूत्र पाठ के अवसान में जैनियों ने इस काव्य की आवृत्ति की है। राजा कालक किस कारण से और किन भावों से जैन धर्म

में दीक्षित हुए हैं इसका विवरण इस काव्य में है। इस काव्य को छोड़कर और भी बहुत काव्य राजा कालक के विषय पर रचित हुए हैं। इस तरह कथानक साहित्य कथाकोष साहित्य नाम में भी विशेष भाव में परिचित है। हरिसेनाचार्य (९३१।३२ AD), वृहत् कथाकोष (संस्कृत में), श्रीचन्द का (९४१।९७ AD) कथाकोष अपभ्रंश में, दशम शताब्दी में भद्रेश्वर का प्राकृत भाषा में लिखा हुआ कथावली और रामशेखर का प्रबंधकोष इस प्रसंग में बहुत उल्लेखनीय हैं। सोमचंद्र का (१४४८ AD) कथामहोदधि संस्कृत और प्राकृत में १५७ आख्यायिकायुक्त है। हेमबिजय-गणी (१७०० AD) कथारत्नाकर में २५८ आख्यायिका है। यह ग्रन्थ मूलतः संस्कृत भाषा में लिखा हुआ है, किन्तु फिर भी इसमें महाराष्ट्री, अपभ्रंश, प्राचीन हिन्दी और गुजराती भाषा का निदर्शन मिलता है। इसके अलावा और भी बहुत कथानक ग्रन्थ हैं जिनमें अपूर्व और अद्भुत आख्या-यिका का समावेश है। इसमें वर्धमानसूरि के शिष्य जिनेश्वरसूरि का कथा-कोष (२३१ गाथा), देवभद्र का (११०१ AD) कथाकोष, शुभशील का कथाकोष (अपभ्रंश में), सारंगपुर निवासी हर्षसिंह गणी का कथाकोष, विनयचन्द्र का कथाकोष (१४० गाथा में), देवेन्द्रगणी का कथामणिकोष इत्यादि ग्रन्थ प्रधान और उल्लेखयोग्य है।

मुनि विमलकुमारजी का कथानक काव्य इसी परम्परा का एक समायोजन है। जैसे ऊपरलिखित कवियों ने अपना काव्य लिखकर यश प्राप्त किया उसी तरह मुनि विमलकुमारजी भी यह छह आख्यान मंजरी लिख कर उसी परम्परा से जुड़ गये हैं। विमलमुनि के साथ मेरा परिचय बहुत वर्षों से है। इनकी धीशक्ति, प्रज्ञा और रचनाकौशल में मैं परिचित हूं। कवित्व शक्ति इनमें स्वाभाविक है। कवि क्रान्तदर्शी और त्रिकालज्ञ होता है। इसी कारण वह दार्शनिक भी बन जाता है। इसीलिए हजारों वर्षों के पहले कवियों ने जो कुछ लिखा है वह आज भी आदरणीय और महत्त्वपूर्ण है। इसलिए राजतरंगिनी में कवि का एक सुंदर वर्णन किया गया है। कवि कौन हो सकता है ? जो—

कोऽन्यः कालमतिक्रांतं नेतुं प्रत्यक्षतां क्षमः।
कविप्रजापतींस्त्यक्त्वा रम्यनिर्माणशालिनः॥

विमलमुनि इस विवरण के अनुसार सुप्रसिद्ध अतिक्रान्तकालजयी कवि हैं। इस छह आख्यान भाग में इनकी रचना शैली इतनी सरल, स्पष्ट और माधुर्यपूर्ण है कि पढ़ने से मालूम होता है कि कवि ने जन साधारण के लिए ही काव्य लिखा है। यह काव्य प्राकृत भाषा के पठन और पाठन के बहुत ही मूल्यवान् और उपयोगी है। बीच-बीच में प्राकृत सूत्र उल्लेखपूर्वक

पदसाधन दिया गया है इसलिए ये एक महत्त्वपूर्ण अवश्यपठनीय प्राकृत ग्रन्थ हैं।

मैं आशा करता हूं कि ये ग्रन्थ पढकर शिक्षार्थी बहुत लाभान्वित होंगे। मैं यह भी आशा करता हूं कि मुनि विमलकुमारजी भविष्य में इसी तरह काव्य ग्रन्थ लिखकर प्राकृत साहित्य को समृद्ध करेगें।

शुभम् अस्तु।

डॉ० सत्यरंजनबनर्जी
प्रोफेसर, कलकत्ता विश्वविद्यालय

दिनांक
२५ मार्च १९९६
कलकत्ता बिश्वविद्यालय

विसयाणुक्कमो

१. ललियंगचरियं (सानुवाद)	१
२. देवदत्ता (सानुवाद)	६१
३. सुबाहुचरियं (सानुवाद)	१११
४. परिसिट्ठ (परिशिष्ट)	१४१
० कव्वागयसुत्तीओ (काव्यागत सूक्तियां)	१४२
० सद्दसूई (शब्दसूची)	१४५

ललियंगचरियं

कथावस्तु

ललितांगकुमार श्रीवास नगर के राजा नरवाहन का पुत्र था। वह धार्मिक, दानपरायण तथा दयार्द्र था। जब वह किसी दीन-दुःखी को देखता तो उसे कुछ न कुछ देता। वे उसकी प्रशंसा करते। ललितांगकुमार का एक मित्र था सज्जन। पर वह ललितांगकुमार की प्रशंसा सुनकर मन ही मन जलता था। एक बार ललितांग कुमार का जन्मोत्सव आया। राजा ने उसे राजसभा में एक हार दिया। हार लेकर जब वह अपने महल की ओर आ रहा था तब एक याचक उसके पास आया और कुछ मांगने लगा। ललितांग कुमार ने उसे वह हार दे दिया। सज्जन ने अपनी आंखों से यह देख लिया। उसने राजा से इसकी शिकायत की। राजा ने ललितांगकुमार को बुलाया और उसे इस प्रकार से दान देने की मना की। ललितांगकुमार तब से आये हुए याचकों में कुछ को दान देता और कुछ को नहीं देता। एक दिन एक याचक को ललितांगकुमार ने कुछ नहीं दिया। तब उसने उससे कहा—कुमार! तुम तो पारस-रत्न तुल्य हो। फिर क्यों कृपणता दिखाते हो? उदारता से ही लक्ष्मी प्राप्त होती है। ललितांगकुमार को उसकी यह बात चुभ गई। उसने पुन: सबको देना शुरू कर दिया। सज्जन ने राजा से इसकी शिकायत की। अपने आदेश के उल्लंघन होने से राजा कुपित हो गया। उसने ललितांगकुमार को बुलाया और कठोर आदेश देते हुए कहा—या तो देना बंद कर दो अन्यथा सूर्योदय से पूर्व मेरे नगर से निकल जाओ। पिता के कठोर आदेश को सुनकर ललितांगकुमार अपने महल में आ गया। उसके मन में ऊहापोह होने लगा। आखिर उसने नगर को छोड़ने का निर्णय ले लिया। सूर्योदय के पूर्व ही कुछ आभूषण, पाथेय और घोड़ा लेकर वह नगर से रवाना हो गया। सज्जन को राजा के आदेश का पता चला। उसने सोचा—ललितांगकुमार नगर छोड़ देगा किंतु देना नहीं छोड़ेगा। उसने भी उसके साथ चलने का विचार किया और नगर के बाहर छिप कर बैठ गया। जब ललितांगकुमार उधर से गुजरा तब उसने सज्जन को देखा। उसने साश्चर्य आने का कारण पूछा। सज्जन ने कपटपूर्वक कहा—मैं भी तुम्हारे साथ देशाटन करना चाहता हूं। ललितांगकुमार का हृदय सरल था पर सज्जन का मायायुक्त। दोनों आगे चले। ललितांगकुमार ने सज्जन से कहा—तुम कोई बात छेड़ो जिससे मार्ग सुगमतापूर्वक कट जाये। सज्जन ने पूछा—इस संसार में सुखी कौन होता है, धार्मिक या अधार्मिक?

ललितांगकुमार ने कहा—धार्मिक सुखी होता है। सज्जन ने इसका प्रतिवाद करते हुए कहा—धार्मिक दुःखी होता है और अधार्मिक सुखी। यदि तुम धर्म को छोड़ देते तो क्यों दुःख का अनुभव करते ? ललितांगकुमार ने कहा—यदि पिताजी के हृदय में धर्म का वास होता तो वे मुझे ऐसा आदेश नहीं देते। दोनों अपने-अपने विचारों पर दृढ़ थे। आखिर निर्णय लिया—किसी व्यक्ति से पूछा जाये। सज्जन ने कहा—यदि तुम हार गये तो क्या दोगे ? ललितांगकुमार ने कहा—मैं अपना घोड़ा और आभूषण तुम्हें दे दूंगा। सज्जन ने कहा – यदि मैं हार गया तो आजीवन तुम्हारा दास बना रहूंगा। दोनों आगे चले। रास्ते में एक वृद्ध मिला। उन्होंने प्रश्न पूछा—धार्मिक सुखी होता है या अधार्मिक। वृद्ध ने कहा—अधार्मिक। ललितांग की पराजय हुई। उसने अपने आभूषण, घोड़ा सज्जन को दे दिये। दोनों आगे चले। ललितांगकुमार ने कहा—कैसा विचित्र समय आ गया। मनुष्यों की बुद्धि में भी परिवर्तन आ गया। वे कहते हैं—धार्मिक दुःखी होता है और अधार्मिक सुखी। किंतु मेरे मन में दृढ़ विश्वास है कि धार्मिक ही सुखी रहता है।' सज्जन ने ललितांगकुमार को इस प्रकार विचार करते देखा। उसने पुनः किसी से पूछने को कहा। ललितांग तैयार हो गया। सज्जन ने शर्त रखते हुए कहा —यदि मैं हार गया तो तुम्हारे आभूषण और घोड़ा दे दूंगा। यदि तुम हार गये तो क्या दोगे ? ललितांग ने कहा—मैं अपनी आंखें दे दूंगा। इस प्रकार शर्त कर दोनों आगे बढ़े। पुनः एक वृद्ध मिला। उन्होंने उससे पूछा—धार्मिक सुखी होता है या अधार्मिक ? उसने कहा—अधार्मिक सुखी देखा जाता है और धार्मिक दुःखी। सज्जन जीत गया। उसने ललितांग-कुमार से उसकी आंखें मांगी। तब ललितांगकुमार को मालूम हुआ—सज्जन कैसा है। फिर भी अपनी प्रतिज्ञा को निभाने के लिए उसने सज्जन को अपनी आंखें निकाल कर दे दी। सज्जन उन्हें लेकर चला गया।

ललितांगकुमार एक वट वृक्ष के नीचे बैठ कर नमस्कार महामंत्र का जप करने लगा। संध्या के समय कुछ भारंड पक्षी उस वृक्ष के ऊपर आये। वे परस्पर बातें करने लगे। ललितांगकुमार पक्षियों की भाषा जानता था, अतः वह ध्यान से उनकी बातें सुनने लगा। उन भारंड पक्षियों में से एक ने कहा—'यहां से पूर्व दिशा में चंपानगरी है। जितशत्रु वहां का राजा है। उसकी पुत्री की आंखें चली गई हैं। राजा ने घोषणा कराई है—जो उसकी पुत्री की आंखें ठीक कर देगा उसे वह आधा राज्य देगा तथा उसके साथ अपनी पुत्री की शादी कर देगा।' तब एक अन्य भारंड पक्षी ने उससे पूछा—राजकुमारी की आंखों की ज्योति कैसे आयेगी ? उसने उपाय बताते हुए कहा—यदि

हमारी बीट को वट वृक्ष की लता के रस में मिला कर, लेप बना आंखों पर लगा दिया जाये तो उसकी आंखों की ज्योति आ सकती है। ललितांगकुमार ने यह सुन लिया। उसने सर्वप्रथम उसका अपने पर प्रयोग करने के लिए हाथ फैलाया। कुछ बीट और लताएं उसके हाथ में आ गईं। उसने भारंडपक्षी के कथनानुसार लेप बनाया और अपनी आंखों पर लगा दिया। उसके नयन पुनः ठीक हो गये। धर्म के प्रति उसकी श्रद्धा बढ़ गई।

ललितांगकुमार वहां से कुछ बीट और लताएं लेकर चंपानगरी की ओर रवाना हुआ। वह राजमहल पहुंचा। द्वारपाल द्वारा राजा को अपने आगमन की सूचना देते हुए कहा— राजकुमारी के नेत्र ठीक करने के लिए श्रीवास नगर से कोई वैद्य आया है। राजा ने उसे भीतर बुलाया। ललितांग कुमार ने बीट को पीस कर वट वृक्ष की लताओं के रस में मिला कर लेप बनाया और राजकुमारी के आंखों पर लगा दिया। उससे नयनों की ज्योति पुनः आ गई। राजा की प्रसन्नता का पार नहीं रहा। उसने अपनी घोषणा के अनुसार राजकुमारी का पाणिग्रहण कुमार के साथ कर दिया और आधा राज्य भी दे दिया। धर्म के प्रभाव से ललितांगकुमार राजा बन गया।

एक बार राजा ललितांग अपने महलों में बैठा राजपथ को देख रहा था। उसने राजपथ पर भिखारी रूप में जाते हुए सज्जन को देखा। उसने अपने नौकर को भेजकर उसे महल में बुलवाया। राजा का आदेश सुनकर सज्जन भयभीत हुआ। उसने सेवक से राजा द्वारा बुलाने का कारण पूछा। सेवक ने कहा—मुझे मालूम नहीं। सज्जन उसके साथ महल में आया। ललितांगकुमार को राजा रूप में देखकर उसका भय दूर हो गया। उसने राजा ललितांगकुमार से पूछा—तुम्हें यह राज्य कैसे मिला? राजा ललितांग ने सब बातें बताईं। उसने सज्जन से पूछा—तुम्हारी यह दशा कैसे हुई? तब सज्जन ने अपनी बात बताते हुए कहा—'तुम्हें वन में छोड़कर जब मैं रवाना हुआ तब रास्ते में चोर मिल गये। उन्होंने मेरे से घोड़ा, आभरण आदि छीन लिए और मुझे मार-पीट कर छोड़ दिया। आजीविका हेतु अन्य मार्ग न मिलने पर मैंने भीख मांगना शुरू कर दिया।' सज्जन के मुख से उसका घटित वृत्तान्त सुनकर राजा ललितांग दयार्द्र हो गया। उसने सज्जन से कहा—तुम यहां आनंदपूर्वक रहो पर तुम्हें अपने स्वभाव में परिवर्तन करना है। किंतु स्वभाव को बदलना सरल कार्य नहीं है। राजा ललितांग का जब कभी अपने श्वसुर राजा जितशत्रु के साथ कोई कार्य होता तब वह सज्जन को वहां भेज देता। इस प्रकार सज्जन का राजा जितशत्रु के साथ परिचय हो गया। एक दिन राजा जितशत्रु ने सज्जन से

ललितांगकुमार की जाति के विषय में पूछा। तब सज्जन ने कपटपूर्वक कहा—हम दोनों श्रीवास नगर के रहने वाले हैं। मैं राजा नरवाहन का पुत्र हूं और ललितांगकुमार तुच्छ जाति का है। मेरा अपने परिवार के साथ झगड़ा हो गया। मैं वहां से घूमता हुआ यहां आ गया। इसने मुझे देख लिया। मैं इसकी जाति के विषय में किसी को कुछ न बताऊं ऐसा सोचकर इसने मुझे यहां रख लिया। इसने किसी महात्मा से विद्या प्राप्त कर आपकी पुत्री के नेत्र ठीक कर दिये। आपने अपनी प्रतिज्ञानुसार इसके साथ अपनी कन्या का पाणिग्रहण कर दिया और इसे आधा राज्य दे दिया।

सज्जन के मुख से अपने जामाता की जाति के विषय में सुनकर राजा जितशत्रु ने सोचा—जामाता की जाति प्रकट न हो उसके पूर्व ही इसे मार देना चाहिए। ऐसा चिंतन कर उसने जामाता को मारने की एक गुप्त योजना बना कर कुछ वधक व्यक्तियों को रात्रि में राजा ललितांग के महल के बाहर छिपने का आदेश देकर कहा—रात्रि के दस बजे बाद जो भी महल के बाहर आये उसे मार देना। तत्पश्चात् उसने एक विश्वस्त व्यक्ति को एक पत्र देकर जामाता के पास भेजा। उसने राजा ललितांग को पत्र दे दिया। राजा ललितांग ने पत्र खोलकर पढ़ा। उसमें लिखा था—रात्रि के दस बजे आपसे कोई आवश्यक कार्य है, अतः आपको अवश्य आना है। राजा ललितांग ने पत्र पढ़ा। वह जाने की तैयारी करने लगा। उसकी पत्नी पुष्पावती ने पूछा—अभी आप कहां जा रहे हैं? उसने कहा—कोई आवश्यक कार्य है अतः राजा जितशत्रु ने बुलाया है। पुष्पावती ने कहा—'रात्रि के इस समय आप न जायें, पहले आपके मित्र सज्जन को वहां पिताजी के पास भेज दें। फिर भी कोई आवश्यक कार्य हो तो आप जायें।' राजा ललितांग को पत्नी का सुझाव उचित लगा। उसने सज्जन को बुलाया और राजा जितशत्रु के समीप जाने का कहा। सज्जन प्रसन्न मन से ज्यों ही घर से बाहर निकला त्यों ही कुछ छिपे वधकों ने उसे मार डाला। मरते समय सज्जन के मुख से भयंकर शब्द हुआ। उसे सुनकर राजा ललितांग और पुष्पावती दोनों चौंके—क्या हुआ? वे बाहर आये। सज्जन को मृत देखकर पुष्पावती ने ललितांगकुमार से कहा—यदि इस समय आप जाते तो……!

'राजा जितशत्रु का ही यह षड्यंत्र है' ऐसा सोचकर राजा ललितांग कुपित हो गया। उसने अपनी सेना तैयार की और अपने श्वसुर राजा जितशत्रु के राज्य पर आक्रमण कर दिया। घर में युद्ध छिड़ा देखकर राजा जितशत्रु को दुःख हुआ। उसने राजा ललितांग से पूछा—आपकी जाति क्या है? राजा ललितांग ने रोष भरे शब्दों में कहा—मेरा भुजाबल ही इसका उत्तर देगा। मंत्री ने यह सब देखा। उसने राजा जितशत्रु से जामाता

के कुपित होने का कारण पूछा। राजा जितशत्रु ने सज्जन द्वारा कथित सब वृत्तान्त सुना दिया। मंत्री जामाता के पास आया और उसने राजा को सज्जन द्वारा कथित सब बात सुना दी। उसे सुनकर राजा ललितांग को अनुभव हुआ—सज्जन ने राजा जितशत्रु को भ्रांत बना दिया था। उसने सब स्पष्टीकरण किया। मंत्री राजा जितशत्रु के समीप आया और उसके संशय को दूर किया। राजा जितशत्रु जामाता के पास आया और उससे क्षमायाचना की। दोनों का संशय दूर हो गया। कालान्तर में राजा जितशत्रु ने ललितांग-कुमार को अपना राज्य देकर प्रव्रज्या ग्रहण कर ली। राजा ललितांग अपने पिता राजा नरवाहन के समीप आया। चिरकाल से बिछुड़े अपने पुत्र को देखकर राजा नरवाहन का मन बहुत प्रसन्न हुआ। उसने भी ललितांगकुमार को अपना राज्य-भार सौंप कर प्रव्रज्या ग्रहण कर ली। कुछ वर्षों तक राज्य कर राजा ललितांग ने भी प्रव्रज्या ग्रहण कर ली। शुद्ध चारित्र का पालन कर अंत में अनशन कर वह स्वर्ग में उत्पन्न हुआ। वहां से च्यवन कर महाविदेह क्षेत्र में उत्पन्न होकर वह सब कर्मों को नष्ट कर मोक्ष प्राप्त करेगा।

पढमो सग्गो

मगलायरण

णमिऊणं[1] तित्थयराण, सुगुरूणं चलणेसु य भत्तीए ।
रएमि पाइअगिराअ, ललियंगचरियं सुरुइरं ।।

पुरा[2] सिरिवासणयरे, णिवसेइ णरवाहणणामणिवई ।
धम्मिओ सुद्धहिअयो, पयावच्छलो य जणप्पियो ।।१।।

पुत्तो तस्स विणीयो, पियभासी पियंकरो य समेसिं ।
गंभीरो मिउहिअयो, धम्मी य ललियंगकुमारो ।।२।।

दट्ठूण कं वि दीणं, दयल्लमाणसो सो य तक्कालं ।
वित्तं दाऊण तस्स, कुणेइ णिच्चं सहजोगं य ।।३।।

सव्वे जायगा तस्स, पसंसं काऊण गया स-गेहे ।
को ण करेइ सलाहं, दायारस्स मुत्तहत्थस्स ।।४।।

तस्स इमिआ सलाहा, ण रोयए सज्जणणामस्स णरस्स ।
अत्थि जो तस्स मित्तो, वसेइ तम्मि च्चिअ णयरम्मि ।।५।।

णत्थि सलाहासवणं, भुवणम्मि परस्स संतयं सुयरं ।
णीया डहंति णिच्चं, परस्स सोऊण पसंसं य ।।६।।

कुमारो दाणं देइ, सइ[3] दरिद्दा तेण इमिआ वत्ता ।
णिवेइया णिवईणं, मित्तकित्तिमसोउकामेण ।।७।।

धम्महियएण णिवेण, ण वत्ताअ उवरिं झाणं दिण्णं ।
तया वि सो ण णिरासं, गओ मच्छरहियो सज्जणो ।।८।।

---

१. आर्याछंद, लक्षण —यस्याः प्रथमे पादे, द्वादशमात्रास्तथा तृतीयेऽपि ।
अष्टादश द्वितीये, चतुर्थके पञ्चदश सार्या ।।

२. आर्याछंद ।

३. सदा (इः सदादौ वा—प्रा. व्या. ८।१।७२) ।

प्रथम सर्ग

मंगलाचरण

मैं तीर्थंकरों और सद्गुरुओं के चरणों में भक्तिपूर्वक नमस्कार कर प्राकृत भाषा में सुंदर ललितांग चरित्र की रचना करता हूं।

१. प्राचीन काल में श्रीवास नगर में नरवाहन नाम का एक धार्मिक राजा रहता था। उसका हृदय शुद्ध था। वह जनता के प्रति वात्सल्य रखता था। जनता उसको चाहती थी।

२. उसके ललितांगकुमार नामक एक पुत्र था। जो विनीत, प्रियभाषी, गंभीर, मृदुहृदयी, धार्मिक तथा सभी का प्रिय करने वाला था।

३. वह दयालु था। किसी दरिद्र को देखकर तत्काल धन देकर उसका सहयोग करता था।

४. सभी याचक उसकी प्रशंसा करके घर जाते थे। मुक्त हस्त से दान करने वाले दाता की कौन प्रशंसा नहीं करता ?

५. उसकी यह श्लाघा सज्जन नामक एक व्यक्ति को अच्छी नहीं लगती थी, जो उसका मित्र था और उसी नगर में रहता था।

६. दूसरों की प्रशंसा सुनना भी संसार में सरल कार्य नहीं है। नीच व्यक्ति दूसरों की प्रशंसा सुनकर सदा जलते हैं।

७. कुमार सदा गरीबों को दान देता है, यह बात उसने राजा से निवेदन की।

८. धर्महृदयी राजा ने उसकी बात पर ध्यान नहीं दिया। फिर भी मत्सर-हृदयी सज्जन निराश नहीं हुआ।

एगया जम्मदिवहो, आओ ललियंगकुमारस्स तया ।
रायसहाए दिण्णो, भूवेण तस्सेगो हारो ॥९॥

हारं णेऊण जया, सो रायसहाए पसायं गओ ।
तयाणि मग्गम्मि किंचि, जायगो य जाइउं लग्गो ॥१०॥

दयड्ढेण कुमारेण, दिण्णो तस्स तयाणिं सो हारो ।
दाया णो संकुचेइ, कयाइ अमुल्लवत्थुदाणे ॥११॥

णिहालियं सज्जणेण, मच्छररहियएण तेण इणं सव्वं ।
णिवेइयं बीयदिणे, णिवइस्स कुमारस्स कज्जं ॥१२॥

सुणिअ सज्जणमुहाओ, भूवई हारदाणस्स वुत्तंतं ।
सिग्घं कुविओ जाओ, झत्ति आमंतिओ कुमारो ॥१३॥

आगंतूण कुमारो, सविणयं पिउ-पायेसु पणमेइ ।
पुच्छेइ कहं भवेहिं, सुमरिओ अहयं लवेज्ज किर ॥१४॥

दट्ठूण तस्स विणयं, सइं[४] भूवस्स कोवो उवसमिओ ।
विणीयो काउमरिहइ, संतं[५] चंडकोवजुत्तमवि ॥१५॥

तहा वि य तच्चं णाउं, णिवेण पुच्छिअं सहजभावेणं ।
कुह विज्जए स हारो, जो मए तुहं सुवे दिण्णो ॥१६॥

एगो मइ पणामिओ, जायगो य लवियं तेण णिब्भयं ।
सच्चवाई ण बीहेइ, कयाइ जहतच्चं लविउं य ॥१७॥

सिक्खं दाउकामेण, तेण कुमारो सणेहं जंपिओ ।
दाणस्सावि य मेरा[६], हवेज्ज पुत्त ! सया भुवणम्मि ॥१८॥

इत्थं जइ तं दाणं, देइस्ससि तया सव्वं वि वित्तं ।
होइ विणट्ठं पच्छा, रज्ज-रक्खा हवइ दुक्करा ॥१९॥

अओ सीमाअ णिच्चं, सोहए लोअम्मि सव्वं कज्जं ।
इइ णीइ-वयं सुमरिअ, चय सीमाइरित्तं दाणं ॥२०॥

ममाइ कहणं कयाइ, ण उवेक्खस्ससि तं[७] इइ वीससेमि ।
इइ कहिऊण कुमारो, तेण विसज्जिओ तक्कालं ॥२१॥

---

४. सकृत् । ५. शांतम् । ६. मर्यादा । ७. त्वम् ।

९. एक दिन ललितांगकुमार का जन्म दिन आया। राजा ने राजसभा में उसे एक हार दिया।

१०. हार लेकर जब वह राजसभा से महल की ओर जाने लगा तब रास्ते में एक याचक उससे कुछ मांगने लगा।

११. करुणाशील कुमार ने तब उसे वह हार दे दिया। दाता कभी भी अमूल्य वस्तु को देने में संकोच नहीं करता।

१२. मत्सरहृदयी सज्जन ने यह सब देखा। उसने दूसरे दिन राजा को कुमार का यह कार्य निवेदन किया।

१३. सज्जन के मुख से हार-दान की बात सुनकर राजा कुपित हो गया। उसने कुमार को शीघ्र बुलाया।

१४. कुमार ने आकर पिता के चरणों में विनयपूर्वक नमस्कार किया और पूछा—आपने मुझे क्यों याद किया है, कहें ?

१५. उसके विनय को देखकर एक बार राजा का क्रोध शांत हो गया। विनीत व्यक्ति चंड क्रोधी को भी शांत कर सकता है।

१६. फिर भी तथ्य को जानने के लिए राजा ने सहज भाव से पूछा—मैंने कल तुम्हें जो हार दिया था वह कहां है ?

१७. कुमार ने निर्भयतापूर्वक कहा—मैंने उसे एक याचक को दे दिया। सत्यवादी कभी भी सत्य बोलने में डरता नहीं है।

१८. राजा ने शिक्षा देते हुए स्नेहपूर्वक कहा—पुत्र ! संसार में दान की भी मर्यादा होती है।

१९. यदि तू इस प्रकार दान देगा तो सब धन नष्ट हो जायेगा। फिर राज्य की रक्षा करना कठिन हो जायेगा।

२०. अतः 'सीमा में ही सब कार्य शोभित होते हैं' इस नीति वचन को याद करके तू सीमातिरिक्त दान देना छोड़ दे।

२१. तू मेरे कथन की उपेक्षा नहीं करेगा—मैं ऐसा विश्वास करता हूं। ऐसा कहकर राजा ने उसे विदा किया।

णिसम्म पिउ-आएसं, तस्स मणम्मि जाया पउरा पीला ।
किं काउं य सक्केइ, असाहीणो य पुहवीयले ।।२२।।

बीयदिवसे अणेगे, जायगा य जाएउं समागया ।
ललियंगेण दिण्णं, ण तयाणि सव्वेसिं दाणं ।।२३।।

जेहिं दाणं लद्धं, ते तं पउरं पसंसिऊण गया ।
जेहिं णाइं लद्धं, ते इत्थं निंदिऊण गया ।।२४।।

कहं अज्ज अम्हेसुं, कुमरो कुणेइ विसढं[8] ववहारं ।
ण उइओ एयारिसो, कयाइ विसमो ववहारो ।।२५।।

कुणेइ जो ववहारं, सया माणवेहिं समं य विसढं ।
सो लहेइ पियत्तणं, ण कयाइ भुवणम्मि णरेहिं ।।२६।।

णिसमिऊण णियणिंदं, कुमारो असुयं पिव तं[9] करेइ ।
पिउणिद्देसभयाओ, अण चयइ विसमं ववहारं ।।२७।।

णिसम्म तस्स अकित्तिं, सज्जणो मणे पंफुल्लो जाओ ।
णत्थि सो सणिद्धो जो, मित्ताकित्तिं[10] सुणिअ मोयए ।।२८।।

एगया केइ दाणं, णेउं तत्थ समागया मग्गणा ।
कुमारो पुरिमं[11] विव य, कइ देइ कइ ण देइ ।।२९।।

दट्ठुं णं ववहारं, एगो अलद्धदाणो वायालो ।
जायगो विसण्णहियो, कहेइ तयाणिं य कुमारं ।।३०।।

विज्जए तं कुमारो, पारसरयणसरिच्छो तह वि कहं ।
संपयं समायरेइ, किवणसहावं ण सुंदरो ।।३१।।

उरालत्तणेण सया, वड्ढए लोअम्मि णराण लच्छी ।
उरालत्तणेण लहेइ, सो भुवणम्मि उज्जलं जसं ।।३२।।

तुह वारं[12] समागओ, अज्जप्पहुइ ण को वि गओ रित्तो ।
अओ ण उरालत्तणं, माइं[13] चएज्जा तुमं कयाइ ।।३३।।

---

८. विषमम् (विषमे मो ढो वा—प्रा. व्या. ८।१।२४१) । ९. तत् । १०. मित्र+अकीर्तिम् । ११. पूर्वम् । १२. द्वारम् । १३. माइं मार्थे (प्रा. व्या. ८।२।१९१)।

२२. पिता के आदेश को सुनकर उसके मन में बहुत दुःख हुआ। परतंत्र व्यक्ति संसार में क्या कर सकता है ?

२३. दूसरे दिन अनेक याचक मांगने के लिए आये किंतु ललितांग ने सबको दान नहीं दिया।

२४. जिन्होंने दान प्राप्त किया वे उसकी प्रशंसा करके चले गये और जिन्होंने नहीं पाया वे उसकी इस प्रकार निंदा करके चले गये—

२५. आज कुमार हमारे साथ विषम व्यवहार क्यों कर रहा है ? इस प्रकार का विषम व्यवहार उचित नहीं है।

२६. जो मनुष्यों के साथ विषम व्यवहार करता है वह संसार में कभी भी प्रियता को प्राप्त नहीं करता।

२७. अपनी निंदा सुनकर भी कुमार ने पिता के आदेश के भय से उसे अनसुनी (नहीं सुने हुए) कर दी और उसने अपना विषम व्यवहार नहीं छोड़ा।

२८. उसका अयश सुनकर सज्जन मन में बहुत प्रसन्न हुआ। जो मित्र की अकीर्ति को सुनकर प्रसन्न होता है वह मित्र नहीं है।

२९. एक दिन कई याचक उससे दान लेने के लिए आये। कुमार ने पूर्ववत् कुछ को दान दिया और कुछ को नहीं।

३०. उसके इस व्यवहार को देखकर एक वाचाल याचक ने, जिसने दान प्राप्त नहीं किया था, दुःखी होकर कुमार से कहा—

३१. कुमार तुम पारस-रत्न के समान हो। फिर भी क्यों कृपण बन रहे हो ? यह अच्छा नहीं है।

३२. संसार में उदारता से ही सदा मनुष्य की लक्ष्मी बढ़ती है। उदारता से ही वह उज्ज्वल यश को प्राप्त करता है।

३३. तुम्हारे द्वार पर आया हुआ कोई भी आज तक खाली नहीं गया है। इसलिए तुम्हें कभी भी उदारता नहीं छोड़नी चाहिए।

सोऊण तस्स वाणिं, मम्मगब्भिणं[१४] हिअयवियारिणिं य ।
कुमरो दाउं लग्गो, पुव्वं व[१५] सव्वेसिं दाणं ।।३४।।

लद्धूण तेण दाणं, सव्वे वि जायगा पंफुल्लमणा ।
तं पसंसिउं लग्गा, चित्तं दाणस्स माहप्पं ।।३५।।

सज्जणेण जया णायं, कुमरो पुव्वं पिव दाउं लग्गो ।
हिअयम्मि सो डहंतो, भूवइणो पासं समागओ ।।३६।।

णमिऊण तेण णिवइं, णिवेइया तस्स इमिआ य वत्ता ।
उल्लंघिय तुह आणं, कुमारो पुणो देइ दाणं ।।३७।।

तस्स दाणेण रिक्को[१६], होइ सणिअं सणिअं[१७] रज्जकोसो ।
कालम्मि य किंचि कुणसु, अण्णहा काहिइ हु पच्छातावं।।३८।।

सो च्चिअ होइ बुद्धिमं, अगणी-पज्जलणस्स पुरिमं च्चेअ ।
खणेइ णिअगभवणम्मि, सयराहं[१८] जलमयं कूवं ।।३९।।

णिसम्म सज्जणवयणा[१९], कुमारस्स पुणो दाणस्स वत्तं ।
णिअग-आएसभंगा, सिग्घं सो कुविओ जाओ ।।४०।।

आमंतिअ तक्कालं, कुमारं तेण चविओ इमो वयो ।
कहं मज्झ णिद्देसो, इयाणिं तए उल्लंघियो ।।४१।।

अण[२०] किंचि वि सहिस्सामि, तुह इणं दुस्साहसं हं कयावि ।
सो मूढो जो जाणिय, वि ण करेइ गयस्स चिइच्छं ।।४२।।

कंखेसि सुहं वसिउं, जइ तं चएज्जा इयाणिं दाणं ।
अण्णहा आइच्चस्स-समागमणस्स पुरिमं च्चेअ ।।४३।।

सुवे चइऊण णयरं, अण्णत्थ य गच्छसु तुमं जहेच्छं ।
विज्जए मह सासणं, णत्थि अण्णो को वि उवायो ।।४४।।
(जुग्गं)

---

१४. गर्भिताऽतिमुक्तके णः (प्रा. व्या. ८।१।२०८)। १५. मिव पिव विव व्व व विअ इवार्थे वा (प्रा. व्या. ८।२।१८२)। १६. रिक्तः। १७. शनैः शनैः (शनैः सो डिअम्—प्रा. व्या. ८।२।१६८)। १८. शीघ्रम् (सयराहं नवरि—पाइयलच्छीनाममाला १७)। १९. वदनात्। २०. अण णाइं नअर्थे (प्रा. व्या. ८।२।१९०)।

३४ उसकी मर्मगर्भित और हृदयविदारक वाणी को सुनकर कुमार पूर्ववत् दान देने लगा।

३५. उससे दान प्राप्त करके सभी याचक प्रसन्न होकर उसकी प्रशंसा करने लगे। दान का माहात्म्य विचित्र है।

३६. सज्जन को जब यह ज्ञात हुआ कि कुमार पूर्ववत् दान देने लगा है तब वह हृदय में जलता हुआ राजा के पास आया।

३७. नृपति को नमस्कार कर उसने निवेदन किया—कुमार आपकी आज्ञा का उल्लंघन कर पूर्ववत् दान देने लगा है।

३८. उसके दान से धीरे-धीरे राज्यकोष खाली हो रहा है। अतः समय पर कुछ करना चाहिए, अन्यथा पश्चात्ताप करना होगा।

३९. बुद्धिमान् वही है जो अग्नि-प्रज्वलन के पूर्व ही अपने घर में जलमय कुएं को खोद लेता है।

४०. सज्जन के मुख से कुमार के पुनः दान देने की बात सुनकर राजा अपने आदेश के भंग होने से शीघ्र क्रुद्ध हो गया।

४१. उसने तत्काल कुमार को बुलाकर कहा—तुमने मेरे आदेश का उल्लंघन क्यों किया ?

४२. मैं तेरे इस दुस्साहस को तनिक भी सहन नहीं करूंगा। वह मूर्ख है जो जानता हुआ भी रोग की चिकित्सा नहीं करता।

४३-४४. यदि तू सुख से रहना चाहता है तो दान देना छोड़ दे। अन्यथा सूर्योदय के पूर्व ही नगर को छोड़कर अन्यत्र जहां इच्छा हो वहां चले जाओ, यह मेरा आदेश है।

सुणिअ ताय-आएसं, कुमारो णिअभवणं य समागओ ।
किं करणिज्जं संपइ, इइ विमंसणपरो य जाओ ।।४५।।

कढिणं जणयणिद्देसं, सोऊण खिन्नहियो अंसुमाली ।
झत्ति गहत्थीहिं समं, तयाणिं च्चेअ अत्थं गओ ।।४६।।

इइ पढमो सग्गो समत्तो

४५. पिता के आदेश को सुनकर कुमार अपने भवन पर आ गया। 'अब मुझे क्या करना चाहिए' यह सोचने लगा।

४६. पिता के कठोर आदेश को सुनकर सूर्य भी दुःखी होकर किरणों के साथ शीघ्र ही अस्त हो गया।

प्रथम सर्ग समाप्त

बीओ सग्गो

जहा[1] जहा तमिस्सं य, भुवणम्मि पवड्ढइ ।
तहा तहा कुमारस्स, माणसो वि विसूरइ[2] ।।१।।

संपयं करणिज्जं किं, मए इइ विचिंतइ ।
चयणिज्जा पुरी किं वा, सहजोगो दुहीण य ।।२।।

पच्चक्खं ममए[3] जस्स, पलद्धं संपयं फलं ।
चएज्जा सहजोगं तं, कहं ताय-भयेण हं ।।३।।

अत्थि पुज्जो सया तायो, आणं मण्णेज्ज सासयं ।
परं अस्सि य कज्जम्मि, कहं मण्णेज्ज सासणं ।।४।।

लद्धूण वि वसुं जो ण, सहजुंजेइ दुव्विहा ।
अण्णो को उवओगो य, तस्स वित्तस्स विज्जए ।।५।।

अओ पुरिं य छड्डिस्सं[4], सहजोगं परं य णो ।
होज्जा पिया पसण्णो वा, कुद्धो कयेण वा महं ।।६।।

जाइं काइं य कट्ठाइं, आगमिहिंति[5] मे पहे ।
सहिस्सं समभावा हु, चलिस्सामि कयाइ णो ।।७।।

णाऊण दढधम्मिस्स, णिण्णयं तिमिरं तया ।
अत्थ ठाणं ण मे अत्थि, चिंतेंतो सणिअं गओ ।।८।।

णेऊण य अलंकारा, आभरणघरा तया ।
घेत्तूण किंचि पाहिज्ज-मारोहित्ता हयोवरिं ।।९।।

मित्तागमणस्स[6] पुव्वं सो, जहित्ता निगमं तओ ।
स-सिद्धंताण रक्खट्ठं, किं ण कुणेइ माणवो ।।१०।।

(जुग्गं)

---

१. छंद—अनुष्टुप्, लक्षण—पञ्चमं लघु सर्वत्र, गुरुषष्ठनुष्ठुभिः ।
पादयोराद्ययोदीर्घे, मन्ययोर्लघु सप्तमम् ।।

२. खिद्यते (खिदे र्जूरविसूरौ—प्रा. व्या. ८।४।१३२) । ३. मया ।

४. त्यक्ष्यामि (मुचेच्छड्डाऽवहेड·······प्रा. व्या. ८।४।९१) । ५. आगमिष्यन्ति ।

६. सूर्यागमनस्य ।

द्वितीय सर्ग

१. जैसे-जैसे लोक में अन्धकार बढ़ने लगा वैसे-वैसे कुमार का मन भी खिन्न होने लगा ।

२. 'मुझे अब क्या करना चाहिए' ऐसा वह सोचने लगा । क्या नगरी को छोड़ दूं या दुःखी व्यक्तियों का सहयोग करना छोड़ दूं ?

३. जिसका मैंने प्रत्यक्ष फल प्राप्त किया है उस सहयोग को मैं पिताजी के भय से कैसे छोड़ दूं ?

४. यद्यपि पिताजी पूज्य हैं । मुझे सदा उनकी आज्ञा माननी चाहिए किन्तु इस कार्य में उनकी आज्ञा कैसे मानूं ?

५. जो व्यक्ति धन प्राप्त करके भी गरीबों का सहयोग नहीं करता उसके धन का दूसरा क्या उपयोग है ?

६. अतः मैं नगर को छोड़ दूंगा किन्तु सहयोग करना नहीं । चाहे पिताजी प्रसन्न हो या क्रुद्ध ।

७ जो कोई भी कष्ट मेरे पथ में आयेंगे मैं उन्हें समभाव से सहन करूंगा और कभी भी विचलित नहीं होऊंगा ।

८. दृढधर्मी के निर्णय को जानकर अंधकार भी यह सोचता हुआ धीरे-धीरे चला गया कि यहां मेरा स्थान नहीं है ।

९-१०. अलंकार-गृह से कुछ आभूषण और पाथेय लेकर, घोड़े पर चढ़कर वह सूर्योदय के पूर्व ही नगर को छोड़कर चला गया । मनुष्य अपने सिद्धान्त की रक्षा के लिए क्या नहीं करता ?

दट्ठुं तं दढधम्मिं य, वच्चंतं विहगा तया ।
सक्कारं तस्स कुव्वंता, लवेंति महुरं गिरं ।।११।।

मोत्तुआण पुरी-मेरं, जहा रण्णम्मि[7] सो गओ ।
सम्माणं तस्स काउं य, उग्गओ तरणी तया ।।१२।।

पोम्मा[8] सरोवरे जाया, पुप्फाइं पायवेसु य ।
को दढधम्मिणं णाइं, लोयम्मि बहुमण्णइ ।।१३।।

सज्जणेण जया णायं, णिद्देसं भूवइस्स य ।
तया वियारिउं लग्गो, कुमारो किं करिस्सइ ।।१४।।

चइस्सइ पुरिं सो हु[9], दाणं परं कयाइ णो ।
सहावो जारिसो जस्स, चाओ तस्स य दुक्करो ।।१५।।

अओ पुरिं चइत्ताणं, गच्छं[10] तेण समं अहं ।
विज्जए सो वयंसो जो, कट्ठे मित्तं जहाइ णो ।।१६।।

मोत्तूण निगमं झत्ति, तम्मि मग्गम्मि आगओ ।
पुव्वं अरुणतावस्स[11], कुमारागमणस्स य ।।१७।।

अप्पाणं य निगूहित्ता, उज्जाणम्मि कहिं तया ।
कुमारं विरमालेइ[12], कवडहिययो हु सो ।।१८।।

आगओ तेण मग्गेण, जया य कुमरो तया ।
सणियं सणियं सो वि, अणुवच्चइ तं किर ।।१९।।

अदट्ठूण कुमारो तं, सयपहम्मि वड्ढइ ।
विस्समट्ठं ठियो सो हु, कम्मि सरोवरम्मि य ।।२०।।

तया णिहालियो तेण, आगच्छंतो य सज्जणो ।
सचित्तं[13] पुच्छियं तेण, कहमत्थ समागओ ।।२१।।

---

७. अरण्ये (वालाब्वरण्ये लुक्—प्रा. व्या. ८।१।६६ इति सूत्रेण रण्णं, अरण्णं द्वौ भवतः)। ८. पद्मानि (ओत् पद्मे—प्रा. व्या. ८।१।६१)। ९. हु खु निश्चय-वितर्क-सम्भावन-विस्मये (प्रा. व्या. ८।२।१९८)। १०. गमिष्यामि (श्रु-गमि·······प्रा.व्या. ८।३।१७१)। ११. अरुणोदयस्य (आयावलं अरुणतावं—पाइयलच्छी. ६०९)। १२. प्रतीक्षते (प्रा. व्या. ८।४।१९३)। १३. साश्चर्यम् ।

११. उस दृढ़धर्मी को जाते हुए देखकर पक्षी उसका सत्कार करते हुए मधुर वाणी बोलने लगे।

१२-१३. नगर की सीमा छोड़कर जब वह जंगल में गया तब उसका सम्मान करने के लिए सूर्य उग गया। तालाब में कमल खिल गये। वृक्षों पर फूल विकस्वर हो गये। संसार में दृढ़धर्मी का कौन सम्मान नहीं करता ?

१४. सज्जन ने जब राजा के आदेश को जाना तब वह सोचने लगा—कुमार क्या करेगा ?

१५. वह नगर को छोड़ देगा किन्तु देना नहीं छोड़ेगा। क्योंकि जिसका जैसा स्वभाव है उसको छोड़ना मुश्किल है।

१६. अतः मैं भी नगर को छोड़कर उसके साथ जाऊंगा। मित्र वही है जो कष्ट में भी मित्र को नहीं छोड़ता।

१७. नगर को छोड़कर वह सूर्योदय तथा कुमार के आगमन के पूर्व ही उस मार्ग में आ गया।

१८ किसी उद्यान में अपने को छिपाकर वह मायावी कुमार की प्रतीक्षा करने लगा।

१९. जब कुमार उस मार्ग से आया तब वह धीरे-धीरे उसके पीछे चलने लगा।

२०. कुमार ने उसको नहीं देखा और अपने पथ पर चलता गया। विश्राम के लिए वह किसी सरोवर पर ठहरा।

२१. तब उसने आते हुए सज्जन को देखा। उसने आश्चर्यपूर्वक पूछा—तुम यहां कैसे आ गये ?

सणेहं दंसमाणेणं, कित्तिमं सज्जणेण य ।
समायं कहियं तेण, इणं य वयणं तया ।।२२।।

देसाडणस्स आएसो, दिण्णो भूवइणा तुहं ।
जया सुयं तया चित्तं, उच्छुअत्तं महं गओ ।।२३।।

झत्ति देसाडणं काउं, तुह संगे समागओ ।
अण्णो ण को वि हेऊ य, विज्जए णिद्ध[14]! संपयं ।।२४।।

देसाडणेण वड्ढंति, लोए अणुहवा णवा ।
णूअण-जण-संसग्गो, णवीणगामदंसणं ।।२५।।

णव्वं भासं णवं दंगं, णवीणं सक्कइं[15] णरा ।
पेच्छंति सययं जेण, देसाडणं सुहप्पयं ।।२६।।

दंसणं पगईए य, णिब्भयं हिअयं जओ ।
बुद्धीए फुरणं होइ, देसाडणं सुहप्पयं ।।२७।।

सुणिऊण वयं तस्स, केअवहिअयस्स य ।
कुमारो हरिसं जाओ, अयाणंतो सही-कयं[16] ।।२८।।

वुत्तो तेण तया मित्तो, सुट्ठु य तुमए कडं ।
होहिइ तुह संगेण, मह जत्ता सुहावहा ।।२९।।

एगो केण समं वत्तं, कीलं कुज्जा य माणवो ।
रक्खेज्ज को परीसेहिं, वच्चंतमेगगं णरं ।।३०।।

एगो मग्गे ण गच्छेज्जा, अत्थि णीइ-वयो अओ ।
उल्लंघिओ ण सो होइ, तुह आगमणेण हु ।।३१।।

भोत्तूण किंचि पाहिज्जं, तओ अग्गं य ते गया ।
अद्धाणम्मि कुमारेण, सज्जणो कहिओ तया ।।३२।।

कुणेज्जा कं वि वत्तं य, पंथो जेण सुहावहो ।
सुणेत्ता कहणं तस्स, पुच्छेइ सज्जणो इमं ।।३३।।

---

१४. स्निग्धे वाऽऽदितौ (प्रा. व्या. ८।२।१०९) । १५. संस्कृतिम् । १६. दीर्घ-ह्रस्वौ मिथो वृत्तौ (प्रा. व्या. ८।१।४) इति सूत्रेण सही-कयं, सहि-कयं द्वौ भवतः ।

२२. सज्जन ने कृत्रिम स्नेह दिखाते हुए कपट पूर्वक यह कहा—

२३-२४. जब मैंने सुना राजा ने तुम्हें देशाटन का आदेश दिया है तब मेरे मन में भी शीघ्र देशाटन करने की उत्सुकता हुई। अतः मैं तेरे साथ आ गया। दूसरा कोई कारण नहीं है।

२५. देशाटन से नये अनुभव बढ़ते हैं, नवीन लोगों का संपर्क होता है और नये गांवों का दर्शन होता है।

२६. देशाटन से नई भाषा, नये नगर और नई संस्कृति का दर्शन होता है। अतः देशाटन सुखप्रद है।

२७. देशाटन से प्रकृति का दर्शन होता है। हृदय निर्भीक होता है और बुद्धि की स्फुरणा होती है। अतः देशाटन सुखप्रद है।

२८. उस मायावी के वचन को सुनकर कुमार मन में हर्षित हुआ। क्योंकि वह मित्र के कार्यों को नहीं जानता था।

२९. उसने मित्र से कहा—तुमने बहुत अच्छा किया। तुम्हारे सहवास से मेरी यात्रा सुखद होगी।

३०. अकेला व्यक्ति किसके साथ बात करे और किसके साथ क्रीडा करे। जाते हुए अकेले व्यक्ति की कष्टों से कौन रक्षा करे?

३१. अकेले व्यक्ति को मार्ग में नहीं जाना चाहिए—इस नीति वचन का भी तुम्हारे आगमन से उल्लंघन नहीं होगा।

३२. कुछ पाथेय खाकर वे दोनों आगे चले। रास्ते में कुमार ने सज्जन से कहा—

३३. कोई बात करो जिससे रास्ता अच्छी तरह से कट जाये। उसका कथन सुनकर सज्जन ने पूछा—

किं जयो होइ धम्मस्स, अहम्मस्साहवा[१७] सहि ।
पण्हं सोऊण णं तस्स, साहेइ कुमरो तया ।।३४।।

विचित्तो तुह पण्हो य, संदेहो अत्थ णत्थि किं ।
धम्मस्स विजयो होइ, अस्सि सव्वे वि सम्मया ।।३५।।

सज्जणेण तया वुत्तं, णाइं सच्चमिणं सही ! ।
अहम्मस्स जयो होइ, धम्मस्स ण कयाइ य ।।३६।।

पच्चाएसं[१८] य पच्चक्खं, विज्जए तुह सम्मुहे ।
जइ चएज्ज तुं धम्मं, ण लहेज्ज इमं ठिइं ।।३७।।

कुमारेण तया वुत्तो, हियम्मि पिउणो जइ ।
हवेज्ज धम्मवासो य, देज्ज आणमिमं कहं ।।३८।।

इत्थं परोप्परं[१९] वादं, काउं लग्गा य संपयं ।
णाइं कस्स वि वत्तं य, को वि पडिसुणेइ य ।।३९।।

कुमारेण तया वुत्तो, सज्जणो वयणं इणं ।
पुच्छिऊण णरं कं वि, कुणेज्जा अस्स णिण्णयं ।।४०।।

जंपियं तुमए सुट्ठु, महं वि रोयए इमं ।
परमत्थि पणेगो य, बोल्लीणं सज्जणेण य ।।४१।।

असच्चं जंपणं मज्झ, जइ होहिइ संपयं ।
आजीअं तुह दासत्तं, पडिसोच्छं असंसयं ।।४२।।

असच्चं भणणं तुज्झ, जइ होहिइ संपयं ।
सव्वे आभरणा तुज्झ, वाहो[२०] य मे हविस्सइ ।।४३।।
(जुग्गं)

अंगीकयं कुमारेण, कहणं सज्जणस्स य ।
किंचि णमेइ धम्मिट्ठो, अहम्मस्स ण सम्मुहे ।।४४।।

सिद्धंत-रक्खणट्ठं जो, रज्जं वि चइउं पहू ।
को मुल्लो पुण आसस्स, भूसणस्स य णे कए ।।४५।।

---

१७. अहम्मस्स+अहवा=अहम्मस्साहवा । १८. दृष्टान्तम् (पच्चाएसं दिट्ठंतं—पाइयलच्छी. ६५६) । १९. परस्परम् (प्रा. व्या. ८।१।६२) । २०. अश्वः (आसो सत्ती वाहो……पाइयलच्छी. ४५) ।

३४. हे मित्र ! धर्म की जय होती है या अधर्म की। उसका प्रश्न सुनकर कुमार ने कहा—

३५. तुम्हारा प्रश्न विचित्र है। इसमें क्या संदेह है कि धर्म की जय होती है ? इसमें सभी एक मत है।

३६. तब सज्जन ने कहा—हे मित्र ! यह बात सत्य नहीं है। अधर्म की जय होती है, धर्म की नहीं।

३७. उदाहरण भी तुम्हारे सामने प्रत्यक्ष है। यदि तुम धर्म को छोड़ देते तो इस स्थिति को प्राप्त नहीं होते।

३८. तब कुमार ने कहा—यदि पिता के हृदय में धर्म का वास होता तो मुझे यह आदेश नहीं देते।

३९. इस प्रकार दोनों परस्सर में विवाद करने लगे। कोई भी किसी की बात स्वीकार नहीं करता था।

४०. तब कुमार ने सज्जन से कहा—किसी व्यक्ति को पूछ कर इसका निर्णय करना चाहिए।

४१. तब सज्जन ने कहा—तुमने ठीक कहा। मुझे भी यह पसंद है। किन्तु एक शर्त है।

४२-४३. यदि मेरा कथन असत्य होगा तो मैं आजीवन तुम्हारी दासता स्वीकार कर लूंगा और यदि तुम्हारा कथन असत्य होगा तो तुम्हारे सब आभूषण और घोड़े मेरे हो जायेंगे।

४४. कुमार ने सज्जन की बात स्वीकार कर ली। धार्मिक व्यक्ति अधर्म के सम्मुख कभी झुकता नहीं।

४५. जो व्यक्ति सिद्धान्त की रक्षा के लिए राज्य छोड़ सकता है उसके लिए घोड़े और आभूषण का क्या मूल्य है ?

गंतूण किंचि दूरं य, वुड्ढो णेहिं णिअच्छिओ ।
तं जाणेऊण णाणिं य, कुमारेण य पुच्छिअं ।।४६।।

किं जयो होइ धम्मस्स, अहम्मस्साहवा खलु ।
सुणित्ता वयणं तस्स, सो पिसुणेइ तं तया ।।४७।।

जयो होइ अहम्मस्स, धम्मस्स य ण संपइ ।
विचित्तो समयो आओ, अहम्मी विज्जए सुही ।।४८।।

अणुहवेइ धम्मिट्ठो, अत्थ पडिपयं दुहं ।
णिसम्म भणिइं तस्स, सज्जणो हरिसं गओ ।।४९।।

कहेइ सो कुमारं य, जाओ सच्चो महं वयो ।
देज्ज झत्ति तुहं सत्ती-माभरणं य संपयं ।।५०।।

णिसम्म वयणं तस्स, कुमारेण य तक्खणं ।
दाऊण भूसणाइं य, णियवयो सुरक्खिओ ।।५१।।

दाउं य वयणं लोए, बहुणो कुसला णरा ।
पालेंति समये तं जे, संति ते विरला जणा ।।५२।।

पालेउं वयणं दिण्णं, सक्का ते मणुया सया ।
जे सत्थं पमुहं ठाणं, णाइं देंति कयाइ य ।।५३।।

रक्खेंति वयणं दिण्णं, धण्णा ते माणवा इह ।
दिण्णं वयं ण पालेंति, जंति ते गरिहं णरा ।।५४।।

रक्खित्ता वयणं दिण्णं, कुमारो हरिसं गओ ।
परं मणम्मि चिंतेइ, केरिसो समयो इमो ।।५५।।

वियारे अब्भुअं जायं, जणाणं परिअत्तणं ।
धम्मी दुही, सुही होइ-अहम्मीत्ति कहेंति य ।।५६।।

अत्थि दढो वियारो मे, धम्मी होइ सया सुही ।
अहम्मी भुवणे दुक्खं, लहेइ णत्थ संसओ ।।५७।।

णाऊण चिंतणं तस्स, सज्जणो विम्हयं गओ ।
कीरिसो पुरिसो अत्थि, णाइं जहेइ अग्गहं ।।५८।।

अग्गहेण सया दुक्खं, लहेंति भुवणे णरा ।
अणग्गही सया सायं, गच्छेंति णत्थ संसओ ।।५९।।

४६. कुछ दूर जाने पर उन्होंने एक वृद्ध को देखा। उसे ज्ञानी जानकर कुमार ने पूछा—

४७. धर्म की जय होती है या अधर्म की। उसका (कुमार का) कथन सुनकर उसने कहा—

४८. अधर्म की जय होती है और धर्म की पराजय। विचित्र समय आ गया है। अधर्मी व्यक्ति सुखी रहता है।

४९. धार्मिक व्यक्ति पग-पग पर दुःख का अनुभव करता है। उसका कथन सुनकर सज्जन हर्षित हुआ।

५०. उसने कुमार से कहा—मेरी बात सत्य हुई है। अतः मुझे घोड़ा और आभूषण दो।

५१. उसका कथन सुनकर कुमार ने तत्काल उसे घोड़ा और आभूषण देकर अपने वचन की रक्षा की।

५२. संसार में वचन देने में बहुत व्यक्ति कुशल हैं। किन्तु समय पर उसका पालन करने वाले विरले ही होते हैं।

५३. वे ही व्यक्ति दिये हुए वचन का पालन कर सकते हैं जो स्वार्थ को कभी भी प्रमुख स्थान नहीं देते।

५४. जो व्यक्ति दिये हुए वचन का पालन करते हैं वे धन्य हैं। जो दिये हुए वचन का पालन नहीं करते वे गर्हा को प्राप्त करते हैं।

५५. दिये हुए वचन का पालन कर कुमार हर्षित हुआ। किंतु मन में सोचने लगा—यह कैसा समय है ?

५६. मनुष्यों के विचार में अद्भुत परिवर्तन हो गया है। वे कहते हैं धार्मिक दुःखी होता है और अधार्मिक सुखी।

५७. मेरा दृढ़ विश्वास है कि धार्मिक व्यक्ति सदा सुखी रहता है और अधार्मिक संसार में दुःख पाता है, इसमें संदेह नहीं है।

५८. कुमार के चिन्तन को जानकर सज्जन विस्मित हुआ। यह कैसा आदमी है जो आग्रह को नहीं छोड़ता।

५९. मनुष्य संसार में सदा आग्रह से दुःखी होते हैं। अनाग्रही व्यक्ति सदा सुख पाते हैं, इसमें संशय नहीं।

सज्जणेण य तक्कालं, कुमारो पुच्छिओ तया ।
अग्गहो किं पुणो तुज्झ, माणसे किर विज्जए ।।६०।।

जइ य अग्गहो चित्ते, पुणो य विज्जए तुह ।
पुच्छिऊण णरं कं वि, झत्ति दूरं पुणो कुण ।।६१।।

जइ ते वयणं मोसं, होहिइ अहुणा किर ।
किं देइस्ससि मज्झं तुं, कहियं सज्जणेण य ।।६२।।

सुणिऊण वयं णस्स, लवेइ कुमरो तया ।
विस्सासो हियये मज्झ, णालीअं भणणं महं ।।६३।।

तहावि मे वयो मूसा, जइ होहिइ संपयं ।
देइस्सामि स-चक्खूइं, तुहं ति वयणं महं ।।६४।।

सुणित्ता वयणं तस्स, सज्जणो पिसुणेइ य ।
अतच्चं लवणं कस्स, सच्चं कस्स य विज्जए ।।६५।।

पुच्छणेण सव्वो य, णिण्णओ य हुविस्सइ ।
अण्णहा दुक्करो होइ, सच्चस्स णिण्णओ च्चिअ ।।६६।।

जइ मे कहणं मूसा, होइस्सइ य संपयं ।
देइस्सामि पुणो तुम्हं, भूसणाइं हयं य ते ।।६७।।

पडिसुयं तया णेहिं, परोप्परं इणं वयं ।
कस्स सच्चमसच्चं य, दट्ठव्वं संपयं किर ।।६८।।

गमित्ता किंचि दूरं य, दिट्ठो णेहि णरो तया ।
सज्जणेण णमंसित्ता, इमो वयो य पुच्छिओ ।।६९।।

भद्द ! को त्थि सुही लोए, धम्मिओ वा अहम्मिओ ।
सच्चं लविअ अम्हं य, वादं दूरं करेज्ज तं ।।७०।।

सुणित्ता वयणं तस्स, आगंतुओ लवेइ सो ।
अहम्मी य सुही अत्थि, धम्मी दुक्खं लहेइ य ।।७१।।

णिसम्म कहणं तस्स, ठढत्तं कुमरो गओ ।
विचित्ता य ठिई जाया, तम्मि कालम्मि तस्स य ।।७२।।

सोऊण भणणं तस्स, सज्जणो सम्मयं गओ ।
कुमारो तक्खणं तेण, जंपिओ वयणं इणं ।।७३।।

६०. सज्जन नें तत्काल कुमार से पूछा—क्या तुम्हारे मन में पुनः आग्रह है ?

६१. यदि तुम्हारे मन में पुनः आग्रह है तो किसी व्यक्ति से पूछकर शीघ्र दूर करो।

६२. यदि तुम्हारा कथन झूठा होगा तो तुम मुझे क्या दोगे—सज्जन ने कहा।

६३. सज्जन के वचन को सुनकर कुमार ने कहा—मेरे हृदय में विश्वास है कि मेरा कथन असत्य नहीं है।

६४. फिर भी यदि मेरा कथन झूठा होगा तो मैं तुम्हें अपनी आंखें दे दूंगा।

६५-६६. कुमार के वचन को सुनकर सज्जन ने कहा—किसका कथन सत्य है और किसका असत्य, इसका निर्णय तो पूछने से होगा। अन्यथा सत्य का निर्णय होना मुश्किल है।

६७. यदि मेरा कथन असत्य होगा तो मैं तुम्हें तुम्हारे घोड़े और आभूषण वापिस दे दूंगा।

६८. दोनों ने परस्पर एक दूसरे के इस कथन को स्वीकार कर लिया। किसका कथन सत्य है और किसका असत्य, यह देखें।

६९. कुछ दूर जाने पर उन्होंने एक व्यक्ति को देखा। सज्जन ने नमस्कार कर यह पूछा—

७०. भद्र ! संसार में कौन सुखी होता है धार्मिक या अधार्मिक ? सत्य बोलकर हमारे विवाद को दूर करो।

७१. उसके कथन को सुनकर आगंतुक ने कहा—अधार्मिक सुखी रहता है और धार्मिक दुःखी।

७२. आगन्तुक के कथन को सुनकर कुमार स्तब्ध हो गया। उस समय उसकी विचित्र स्थिति हो गई।

७३. आगन्तुक के वचन को सुनकर सज्जन प्रसन्न हुआ। उसने तत्काल कुमार से कहा—

अग्गहं णिअगं झत्ति, चइत्ता अहुणा तुमं ।
अंगीकुणसु वाणिं मे, सच्चा जा अत्थि संपयं ।।७४।।

सुणिऊण वयं तस्स, साहेइ कुमरो तया ।
पुव्वं व्व सुदढो भाइ, वियारो संपयं महं ।।७५।।

सइं[21] किंचि लहेऊण, अहम्मिओ पमोयए ।
अंते से परिणामो य, होइ सया दुहप्पयो ।।७६।।

सुणिअ वयणं तस्स, हसंतो सज्जणो तया ।
चवेइ कुमरं मित्त !, अत्थि दुरग्गही तुमं ।।७७।।

पुच्छित्ता वि सयग्गहं, छड्डेसि ण तुमं किर ।
णाइं तुह समो मूढो, अण्णो लोयम्मि विज्जए ।।७८।।

पालसु वयणं दिण्णं, दढधम्मी तुमं जइ ।
सुणित्ता भणिइं तस्स, लवेइ कुमरो तया ।।७९।।

पालइस्सामि णूणं हं, वयणं णत्थ संसओ ।
अहमो सो मणुस्सेसुं, पालेइ ण वयं णिअं ।।८०।।

इयाणिं धम्मरक्खट्ठं, दिण्णो तुह वयो मए ।
तयाणिं पालणे तस्स, दुब्बलो ण मणो महं ।।८१।।

पासे जो वडवच्छो त्थि, तस्स हेट्ठं य गच्छसु ।
सुणित्ता वयणं तस्स, हरिसेइ य सज्जणो ।।८२।।

णेत्ताइं तस्स णेउं य, उच्छुओ णस्स माणसो ।
मित्तो होऊण सत्तुव्व, समायरेइ संपयं ।।८३।।

कुमारं सो ण हक्केइ[22], इत्थं काउं य संपइ ।
कुडिलहिअयो तस्स, वांछेइ अहियं सया ।।८४।।

दुज्जणेहि समं जे य, मेत्तिं कुणेंति संतयं ।
करेंति अणुतावं ते, पच्छा सहिअया णरा ।।८५।।

अओ मेत्तिं कुणेज्जा ण, दुज्जणेहिं समं कया ।
बुक्कणेहिं समं हंसो, मेत्तिं काउं मइं गओ ।।८६।।

---

२१. सकृत् । २२. निषिध्यति (निषेधे हक्कः—प्रा. व्या. ८।४।१३४) ।

७४. अब तुम अपने आग्रह को छोड़कर मेरे कथन को स्वीकार करो, जो अभी सत्य सिद्ध हुआ है ।

७५. उसके वचन को सुनकर कुमार ने कहा—मेरे विचार पहले की तरह अब भी मजबूत है ।

७६. अधार्मिक व्यक्ति एक बार कुछ पा करके प्रसन्न होता है किंतु अंत में उसका परिणाम सदा दुःखद होता है ।

७७. कुमार के वचन को सुनकर सज्जन ने हंसते हुए कहा—मित्र ! तुम दुराग्रही हो ।

७८. पूछ कर भी तुम अपने आग्रह को नहीं छोड़ते हो । संसार में तुम्हारे समान दूसरा कोई मूर्ख नहीं है ।

७९. यदि तुम दृढ़धर्मी हो तो अपने वचन का पालन करो । उसके कथन को सुनकर कुमार ने कहा—

८०. मैं निश्चित ही वचन का पालन करूंगा—इसमें संदेह नहीं है । वह मनुष्यों में नीच है जो अपने वचन का पालन नहीं करता ।

८१ मैंने धर्म की रक्षा के लिए तुम्हें अभी वचन दिया था तब उसका पालन करने में मेरा मन दुर्बल नहीं है ।

८२. समीप में जो वट वृक्ष है उसके नीचे चलो । उसके वचन को सुनकर सज्जन हर्षित हुआ ।

८३. उसका मन कुमार के नेत्रों को लेने के लिए उत्सुक हुआ । मित्र होकर भी वह शत्रु की तरह आचरण करने लगा ।

८४. उसने कुमार को ऐसा करने के लिए नहीं रोका । वह कुटिलहृदयी सदा उसका अहित चाहता है ।

८५. जो सहृदय मनुष्य दुर्जनों के साथ मैत्री करते हैं वे बाद में पश्चात्ताप करते हैं ।

८६. अतः दुर्जनों के साथ मैत्री नहीं करनी चाहिए । कौवे के साथ मित्रता करने से हंस मृत्यु को प्राप्त हुआ ।

ण चिंतियं कुमारेण, सिविणे वि मणम्मि य ।
अत्थि कवडजुत्तं य, सज्जणस्स य माणसं ।।८७।।

जया णेत्ताणि णेउं सो, जाओ हियम्मि ऊसुओ ।
तया णायं कुमारेण, अत्थि माई य सज्जणो ।।८८।।

इयाणिं अणुतावेण, किं वि णाइं हविस्सइ ।
पालित्ता वयणं झत्ति, कायव्वं धम्म-रक्खणं ।।८९।।

धम्मो सहयरो मज्झ, अण्णो लोयम्मि णत्थि को ।
धम्मो ताणं गई धम्मो, धम्मस्स सरणं सया ।।९०।।

धम्मरयहियो मच्चो, भुवणम्मि सुहं सया ।
लहेइ णत्थ संदेहो, चित्तम्मि मह विज्जए ।।९१।।

कहिअ त्ति कुमारेण, पसण्णमाणसेण य ।
णिस्सारिअ स-चक्खूइं, सज्जणस्स पणामियं ।।९२।।

अम्हे सुधम्मरक्खट्ठं, सक्का पणामिउं समं ।
इत्थं वज्जरमाणा य, विज्जंति पउरा णरा ।।९३।।

परं कालम्मि सव्वं जे, अल्लिवेंति[23] य माणवा ।
तारिसा विरला होंति, भुवणम्मि य माणुसा ।।९४।।

पासित्ता धम्मसद्धं य, कुमारस्स इमं तया ।
अहिवंदिअ आइच्चो, मऊहेहिं समं गओ ।।९५।।

णेऊण णयणाइं य, भूसणाइं हयं य सो ।
कुमारमेगगं तत्थ, चइत्ता सज्जणो गओ ।।९६।।

तमिस्सं सम्मुहे तस्स, भणमाणो त्ति आगओ ।
अहम्मीणं सया होइ, संतमसं य सम्मुहे ।।९७।।

इइ बीओ सग्गो समत्तो

२३. अर्पयन्ति (अर्पेरल्लिव-चच्चुप्प-पणामाः—प्रा. व्या. ८।४।३९) ।

८७. कुमार ने स्वप्न में भी मन में यह नहीं सोचा था कि सज्जन का मन कैतवयुक्त है।

८८. जब वह नेत्र लेने के लिए उत्सुक हुआ तब कुमार ने जाना कि सज्जन मायावी है।

८९. अब अनुताप करने से कुछ भी नहीं होगा। शीघ्र ही वचन का पालन कर मुझे धर्म की रक्षा करनी चाहिए।

९०. इस संसार में धर्म ही मेरा सहचर है, अन्य कोई नहीं। धर्म ही त्राण है, गति है और धर्म की सदा शरण है।

९१. धर्मरत व्यक्ति संसार में सदा सुख पाता है। इसमें मेरे मन में कुछ भी संशय नहीं है।

९२. यह कहकर कुमार ने प्रसन्नचित्त से अपने नेत्र निकाल कर सज्जन को दे दिये।

९३. हम धर्म की रक्षा के लिए सब कुछ अर्पण कर सकते हैं, ऐसा कहने वाले बहुत मनुष्य हैं।

९४. किन्तु समय पर जो सब कुछ अर्पण कर सकते हैं ऐसे व्यक्ति संसार में विरले ही हैं।

९५. कुमार की धर्म के प्रति इस श्रद्धा को देखकर सूर्य भी अभिवादन करता हुआ किरणों के साथ चला गया।

९६. नेत्र, आभूषण और घोड़ा लेकर सज्जन कुमार को वहां अकेला छोड़कर चला गया।

९७. अधार्मिक व्यक्तियों के सम्मुख सदा अंधकार रहता है—यह कहता हुआ अंधकार उसके सम्मुख छा गया।

द्वितीय सर्ग समाप्त

तइयो सग्गो

लद्धूण[1] दुक्खं ण जहंति धम्मं, ते के वि लोए विरला हवंति ।
पाया मणुस्सा लहिऊण दुक्खं, छड्डेंति धम्मं चिरसेवियं य ।।१।।

आराहणिज्जो सययं णरेहिं, लोअम्मि धम्मो सुहे दुहे य ।
धम्मस्स आराहणओ सुहम्मि, णिच्चं सुहं वड्ढइ माणवाणं ।।२।।

धम्मस्स आराहणओ दुहम्मि, दुक्खं सया णस्सइ माणवाणं ।
मेल्लेज्ज[2] धम्मं ण अओ कयाइ, विस्सम्मि मच्चा सुहकंखिणो य ।।३।।

दुक्खं लभित्ता वि बहुं कुमारो, धम्मं तयाणिं वि जहेइ णाइं ।
ठाऊण वच्छस्स य तस्स हेट्ठं, झाहीअ मंतं परमेट्ठिरूवं ।।४।।

संझाअ रुक्खस्सुवरिं य तस्स, भारंडपक्खी कइवाह[3] तत्थ ।
आगम्म वत्तं य परोप्परं ते, कुव्वंति इत्थं य रहस्सपुण्णं ।।५।।

वत्तं य ते किं अहुणा करेंति, चित्तं[4] गयं सो कुमरो विवेगी ।
झाणेण सोउं य तया य लग्गो, भासं खगाणं य मुणेइ किं सो ।।।६।।

भासा णवीणा सइ[5] सिक्खियव्वा, लोए णरेहिं जहिउं[6] पमायं ।
भासाण णाणं य हुवेइ तेणं, गूढा रहस्सा लहिउं समत्था ।।७।।

भारंडपक्खी पिसुणेइ एगो, अण्णे य वत्तं य इमं तयाणिं ।
पाईदिसाए य इओ य एगा, चंपाभिहा अत्थि पुरी समिद्धा ।।८।।

कुव्वेइ रज्जं य जियाइसत्तू-णामंकियो तत्थ णिवई दयल्लो ।
पुप्फावई सव्वगुणोववेया, एगा त्थि कण्णा य णिवस्स तस्स ।।९।।

---

१. छंद-इन्द्रवज्रा, लक्षण-स्यादिन्द्रवज्रा यदि तौ जगौ गः २. त्यजेत् (मुचेश्छड्डा····प्रा. व्या. ८।४।९१) । ३. कतिपयः (डाह वौ कतिपये—प्रा. व्या. ८।१।२५०) । ४. आश्चर्यम् । ५. सदा । ६. हात्वा ।

तृतीय सर्ग

१. दुःख प्राप्त करके भी जो व्यक्ति धर्म को नहीं छोड़ते वे संसार में विरले ही हैं। प्रायः मनुष्य दुःख को पाकर चिरसेवित धर्म को छोड़ देते हैं।

२. मनुष्यों को संसार में सदा ही सुख और दुःख में धर्म की आराधना करनी चाहिए। सुख के समय धर्म की आराधना करने से मनुष्यों का सुख सदा बढता है।

३. दुःख के समय धर्म की आराधना करने से मनुष्यों का दुःख नष्ट होता है। अतः सुखाभिलाषी व्यक्तियों को संसार में कभी भी धर्म को नहीं छोड़ना चाहिए।

४. प्रचुर दुःख पाकर भी कुमार ने धर्म को नहीं छोड़ा। वह उस वट-वृक्ष के नीचे बैठकर परमेष्ठी मंत्र का ध्यान करने लगा।

५. संध्या-समय उस वट-वृक्ष के ऊपर कुछ भारंड पक्षी आकर इस प्रकार रहस्यपूर्ण बात करने लगे—

६. ये अब क्या बात करते हैं ?—विस्मित होकर कुमार सुनने लगा। क्योंकि वह पक्षियों की भाषा जानता था।

७. मनुष्यों को आलस छोड़कर सदा नवीन भाषाओं का अध्ययन करना चाहिए। इससे भाषा का ज्ञान होता है और गूढ रहस्यों की प्राप्ति हो सकती है।

८. एक भारंड पक्षी ने तब दूसरे भारंड पक्षी से कहा—यहां से पूर्व दिशा में चंपा नामक एक समृद्ध नगरी है।

९. वहां जितशत्रु नामक एक दयालु राजा राज्य करता है। उसके पुष्पावती नामक एक सर्वगुणसंपन्न कन्या है।

चक्खूणि ताए य मणोरमाइं, कम्मोदएणं अहुणा गयाइं ।
कम्मं जहा भो ! मणुयो कुणेइ, लोए तहा तस्स फलं लहेइ ।।१०।।

ताए तिगिच्छं कुणिउं तयाणिं, आमंतिया भूवइणा सुविज्जा ।
हूओ परं णो सहलो य को वि, कम्मस्स वत्ता भुवणे विचित्ता ।।११।।

अंते णिरासं पगएण तेण, उग्घोसिया दुत्ति इमा तयाणिं ।
पुत्तीअ मज्झ णयणाणि जो य, सम्मं करिस्सेइ णरो य ताणं ।।१२।।

दाऊण रज्जं णिअगं य अड्ढं[7], वारिज्जयं तेण समं य दुत्ति ।
णूणं करिस्सामि अहं सुआए, णो संसओ किंचि वि अत्थ अत्थि ।।१३।।
(जुग्गं)

वत्तं तयाणिं सुणिऊण तस्स, पुच्छेइ तेसुं विहगो य एगो ।
किं एरिसो को कुसलो उवायो, सक्केइ दट्ठुं कुमरी य जेण ।।१४।।

लोगे उवाया पउरा य संति, जोइं गयं सा य पुणो वि तेण ।
पारेइ लद्धुं य परं ण को वि, जाणेइ मच्चो अहुणा उवायं ।।१५।।

को विज्जए संपइ सो उवायो, कंखेमि णाउं अहयं इयाणिं ।
बाहा य णाइं जइ विज्जए का, सिग्घं लवेज्जा य भवं य मम्ह[8] ।।१६।।

भारंडपक्खी पिसुणेइ काउं, जिण्णासमेयं किर तस्स संतं ।
रुक्खस्स भो ! अस्स लयारसेसु, अम्हं य विट्ठा इर मेलवित्ता ।।१७।।

लेवं कुणेज्जा जइ माणवो को, दक्खो य ताए णयणाण उड्ढं ।
जोइं गयं सा य पुणो वि लद्धुं, पारेइ अस्सि किर संसओ ण ।।१८।।
(जुग्गं)

सारभूयं सो कहिऊण झत्ति, भारंडपक्खी पगओ य मोणं ।
भासेंति णाइं अहियं पबुद्धा, अप्पेसु सद्देसु बहुंल कहेंति ।।१९।।

वत्तं कुमारो सुणिऊण तस्स, चित्तम्मि चित्तं पगएण तेण ।
कज्जो पओगो पढमं इमस्स, अप्पस्स उब्भे[9] य विचिन्तियं य ।।२०।।

---

७. अर्द्धम् (प्रा. व्या. ८।२।४१) । ८. माम् । ९. उर्ध्वे (प्रा. व्या. ८।२।५९) ।

१०. कर्मोदय से उसकी आंखें चली गई हैं। मनुष्य संसार में जैसा कर्म करता है उसका वैसा ही फल उसे मिलता है।

११. उसकी चिकित्सा करने के लिए राजा ने अच्छे वैद्यों को बुलाया। पर कोई भी सफल नहीं हुआ। संसार में कर्म की बात विचित्र है।

१२-१३. अंत में निराश होकर उसने यह घोषणा की कि जो मेरी पुत्री की आंखें ठीक कर देगा उसे मैं अपना आधा राज्य दे दूंगा और उसके साथ अपनी पुत्री का विवाह कर दूंगा, इसमें किंचित् भी संशय नहीं है।

१४. उसकी (भारंड पक्षी की) बात सुनकर एक पक्षी ने पूछा—क्या कोई ऐसा कुशल उपाय है जिससे राजकुमारी देख सके ?

१५. तब भारंड पक्षी ने कहा—संसार में अनेक उपाय हैं जिससे राजकुमारी खोई ज्योति को पा सकती है। पर कोई भी मनुष्य उपाय को नहीं जानता है।

१६. तब भारंड पक्षी ने पूछा—वह कौन सा उपाय है ? मैं उसे अभी जानना चाहता हूं। यदि आपको कोई बाधा न हो तो मुझे शीघ्र बताएं।

१७-१८. भारंड पक्षी ने उसकी जिज्ञासा को शांत करते हुए कहा—इस वट वृक्ष की लता के रस में हमारी बीट मिलाकर यदि कोई दक्ष मनुष्य उसकी आंखों के ऊपर लेप करे तो वह खोई हुई ज्योति को पा सकती है। इसमें संदेह नहीं है।

१९. यह सारभूत बात कह कर वह भारंड पक्षी मौन हो गया। समझदार अधिक नहीं बोलते। वे अल्प शब्दों में ही बहुत कह देते हैं।

२०. उसकी बात सुनकर कुमार ने विस्मित होकर सोचा—सर्वप्रथम इसका प्रयोग अपने ऊपर करना चाहिए।

तस्सि हुविस्सं[10] सहलो जया हं, पच्छा तिगिच्छं कुमरीअ काहं ।
होज्जा[11] महप्पा सययं परेसिं, दुक्खं विणट्ठुं हिर[12] तप्परा य ।।२१।।

इत्थं समालोइय सो कुमारो, पाणी पसारेइ जया णिआ य ।
हत्थे तयाणिं य लया य एगा, विट्ठा अणेगा य समागया य ।।२२।।

विट्ठा लयाणं य रसे मिलाय, लेवं जया सो तुरिअं करेइ ।
पुण्णोदएणं णयणाणि णस्स[13], सिग्घं पुणो भो ! समागयाइं ।।२३।।

दट्ठूण धम्मस्स अयं पहावो, सद्धा सुधम्मे पगया पवुड्ढि ।
धम्मस्स लोए मणुयाण णाइं, आराहणा होइ मुहा कयाइ ।।२४।।

काले परिक्खाअ य जे मणुस्सा, सद्दाविहूणा हुविऊण सिग्घं ।
छड्डेंति अप्पं भुवणम्मि धम्मं, सायं सया णो पउरं लहेंति ।।२५।।

णेऊण विट्ठा य लया य काइ, चंपापुरिं सो पगओ कुमारो ।
काउं तिगिच्छं कुमरीअ ताए, मेहा य तस्सत्थि परोवगारे ।।२६।।

गंतूण चंपाणयरिं य झत्ति, आओ तया सो णिवमंदिरम्मि ।
साहेइ सिग्घं य दुवारवालं, इत्थं तयाणिं विणएण सो य ।।२७।।

रण्णो कणीए कुणिउं तिगिच्छं, हं आगओ भो ! सिरिवासदंगा ।
गंतूण इत्थं णिवइं लवेज्जा, अण्णो ण मे आगमणस्स हेऊ ।।२८।।

सोऊण वाणिं य इमं य णस्स, रायस्स पासम्मि दुवारवालो ।
गंतुं[14] तया से कहणाणुरूवं, भूवस्स सव्वं य णिवेअए य ।।२९।।

दारस्स पालस्स[15] मुहारविंदा, कस्सा वि विज्जागमणस्स वत्तं ।
सोऊण से खिन्नहियम्मि झत्ति, जाओ पमोओ पउरो तयाणिं ।।३०।।

अन्नस्स वत्ता य बुहुक्खियाणं, णीरस्स वत्ता य तिसाउराणं ।
मोअस्स हेऊ य जहा हुवेइ, वत्ता तहा सा णिवईस्स तस्स ।।३१।।

जंपेइ भूवो य दुवारवालं, माइं विलंबं तुह[16] किंचि कुज्जा ।
तं आणयेज्जत्थ महाणुभावं, काउं किवं जो य समागओ य ।।३२।।

१०. भविष्यामि। ११. भवन्तीत्यर्थः। १२. किरेरहिरकिलार्थे वा (प्रा. व्या. ८।२।१८६)। १३. तस्य। १४. गत्वा। १५. द्वारपालस्य। १६. त्वम्।

२१. यदि मैं उसमें सफल हो जाऊंगा तो बाद में राजकुमारी की चिकित्सा करूंगा। महान् व्यक्ति सदा दूसरे के दुःख को दूर करने में तत्पर रहते हैं।

२२. ऐसा सोचकर जब कुमार ने अपना हाथ फैलाया तो उसके हाथ में तब एक लता और अनेक बीट आ गईं।

२३. लता के रस में बीटों को मिलाकर जब उसने लेप किया तब पुण्योदय से उसकी आंखें पुनः आ गईं।

२४. धर्म का प्रभाव देखकर उसकी धर्म के प्रति श्रद्धा बढ़ गई। संसार में मनुष्यों की धर्म की आराधना कभी व्यर्थ नहीं होती।

२५. जो व्यक्ति परीक्षा काल में शीघ्र श्रद्धाहीन होकर अपने धर्म को छोड़ देते हैं वे कभी प्रचुर सुख को प्राप्त नहीं करते।

२६. कुमार कुछ लता और बीट लेकर राजकुमारी की चिकित्सा करने के लिए चंपापुरी की ओर चला गया। क्योंकि वह परोपकारी था।

२७. वह चंपापुरी में जाकर शीघ्र राजमहल में आया। उसने द्वारपाल को नम्रतापूर्वक कहा—

२८. राजा से जाकर कहो कि मैं श्रीवास नगर से राजकुमारी की चिकित्सा करने के लिए आया हूं। मेरे आगमन का अन्य कोई प्रयोजन नहीं है।

२९. उसकी यह बात सुनकर द्वारपाल ने राजा के पास जाकर उसके कथनानुसार सब निवेदन कर दिया।

३०. द्वारपाल के मुख से किसी वैद्य के आगमन की बात सुनकर उसके (राजा के) खिन्न हृदय में तब बहुत आनन्द उत्पन्न हुआ।

३१. जिस प्रकार भूखों के लिए अन्न की, प्यासों के लिए पानी की बात आनन्द का कारण बनती है उसी प्रकार राजा के लिए भी यह बात आनंद का हेतु बनी।

३२ उसने द्वारपाल से कहा—तुम विलम्ब मत करो। उस महानुभाव को यहां ले आओ जो करुणा करके आया है।

पुण्णाइ कम्माइ कणीअ णूणं, णासं गयाइं अहुणा य णाइं ।
देसा दविट्ठा य अओ समाओ,[17] काउं तिगिच्छं य महाणुभावो ।।३३।।

चेट्ठं कुणेज्जा सययं मणुस्सा, रोगं विणट्ठुं अलसं जहित्ता ।
चे होइ संतो ण कये पयत्ते, कम्मं मणेज्जा पमुहं ति गीयं ।।३४।।

वाणिं इमं सो सुणिउं[18] णिवस्स, आगम्म पासं कुमरस्स झत्ति ।
बोल्लेइ गच्छेज्ज य अंतराले, भूवो विहीरेइ[19] तुमं इयाणिं ।।३५।।

णं देरवालस्स वयं सुणित्ता, णेऊण सव्वं णिअवत्थुजायं ।
तेणं समं सो करुणो कुमारो, वच्चेइ सिग्घं णिवईस्स पासं ।।३६।।

वंदेइ भूवं य तया कुमारो, कुव्वेइ राया अहिवायणं से ।
छड्डेंति णाइं य महामणुस्सा, लोए पवित्तं ववहारमेयं ।।३७।।

पत्थेइ भूवो कुमरं तयाणिं, काउं किवं मे तणुआअ उड्ढं ।
सम्मं कुणेज्जा णयणाणि ताअ, जीअं य णेत्ताणि विणा मुहा भो! ।।३८।।

पक्खं विणा णो विहगा य किंचि, अच्छी विणा णो मणुया य किंचि ।
काउं समत्था भुवणे कयाइ, गीयं महत्तं य अओ इमेसिं ।।३९।।

मा तं विलंबं अहुणा करेज्जा, दूरं कुणेज्जा य दुहं य मज्झ ।
चित्ते दयल्ला य महाणुभावा, णासेंति दुक्खं सययं परेसिं ।।४०।।

सोऊण भूवस्स इमं य वाणिं, चित्ते दयद्दो कुमरो तयाणिं ।
भारंडपक्खीअ वयाणुरूवं, णिम्माइ लेवं सयराहमेव ।।४१।।

झाऊण चित्तम्मि अरज्झदेवं, चत्तारि णेउं[19] सरणं य सिग्घं ।
लेवं य पच्छा कुमरो करेइ, पुत्तीअ रण्णो णयणाणमुद्धे[20] ।।४२।।

लेवेण अच्छीण गया चिराय, जोई समाआ य पुणो वि ताअ ।
पुण्णोदएणं य दुहं ण किं किं, वच्चेइ णासं भुवणे णराणं ।।४३।।

दट्ठूण से णं मणुया पहावं, सव्वे गया अच्छरिअं तयाणिं ।
भूवो वि चित्तम्मि मुअं लहित्ता, भासेइ वाणिं कुमरं इमं य ।।४४।।

---

१७. समागतः । १८. श्रुत्वा । १९. प्रतीक्षते (प्रतीक्षेः सामय-विहीर-विरमालाः—प्रा. व्या. ८।४।१९३) । १९. नीत्वा । २०, ऊर्ध्वे ।

३३. निश्चित ही राजकुमारी के पुण्य कर्म अभी नष्ट नहीं हुए हैं। अतः यह महानुभाव बहुत दूर देश से चिकित्सा करने आया है।

३४. मनुष्यों को आलस्य छोड़कर सदा रोग को नष्ट करने के लिए चेष्टा करनी चाहिए। प्रयत्न करने पर भी यदि वह शांत नहीं होता है तो कर्म को प्रमुख मानना चाहिए, ऐसा कहा गया है।

३५. राजा की वाणी सुनकर वह कुमार के पास आकर बोला—आप शीघ्र अंदर चलें, राजा आपकी प्रतीक्षा कर रहा है।

३६. द्वारपाल का यह वचन सुनकर दयालु कुमार अपनी समस्त वस्तु लेकर शीघ्र राजा के पास आया।

३७. कुमार ने राजा को नमस्कार किया और राजा ने उसका अभिवादन। महान् व्यक्ति संसार में कभी इस पवित्र व्यवहार को नहीं छोड़ते।

३८. तब राजा ने कुमार से प्रार्थना की—मेरी पुत्री के ऊपर कृपा करके उसके नेत्र ठीक कर दें। बिना आंख के जीवन व्यर्थ है।

३९. पांख के बिना पक्षी व आंख के बिना मनुष्य संसार में कुछ नहीं कर सकते। अतः इनका महत्व बताया गया है।

४०. तुम विलंब मत करो। मेरे दुःख को दूर करो। दयालु व्यक्ति सदा दूसरों के दुःख को दूर करते हैं।

४१. राजा की वाणी सुनकर करुणाशील कुमार ने भारंड पक्षी के वचनानुसार लेप बनाया।

४२. चित्त में आराध्यदेव का ध्यान करके तथा चारों शरणों को[1] ग्रहण करके कुमार ने राजकुमारी के आंखों पर लेप लगाया।

४३. लेप से उसकी चिरकाल से खोई हुई आंख की ज्योति वापिस आ गई। पुण्योदय से मनुष्य के क्या-क्या दुःख नष्ट नहीं होते?

४४. उसके इस प्रभाव को देखकर तब सभी मनुष्य विस्मित हो गये। राजा ने भी प्रसन्न होकर कुमार से यह कहा—

---

१. अर्हत्, सिद्ध, साधु और केवलिभाषित धर्म।

तं णेत्तदाणं कुमरीअ दाउं, दुक्खं विणट्ठं य महं[21] कुणीअ ।
आजीविअं ते उवयारमेअं, हं वीसरेस्सामि कयावि णाइं ।।४५।।

अप्पेमि रज्जं वयणाणुरूवं, कण्णं सुरूवं णिअगं य देमि ।
घेत्तूण तं झत्ति महाणुभावो, कुज्जा तुमं मे[22] य अणुग्गहं भो ! ।।४६।।

भूवस्स वाणिं सुणिउं कुमारो, साहेइ रायं विणयी विवेगी ।
कंखेमि रज्जं कुमरिं य णाइं, कायव्वमप्पं परिपालियं मे ।।४७।।

कुव्वेज्ज पाणिग्गहणं कणीए, मच्चेण अण्णेण समं इयाणिं ।
रज्जं य पालेउ सुहं भवं य, णो जुग्गया मे अहुणा इमेसिं ।।४८।।

सोऊण वाणिं कुमरस्स भूवो, जंपेइ लोअम्मि य सो य मूढो ।
गेहंगणे जो य समागयं य, हक्केइ लच्छि किर कामधेणुं ।।४९।।

दिट्ठं य जेणं रयणं णरेणं, वांछेइ किं सो उवलं कयावि ।
तुम्हारिसं हं लहिऊण मच्चं, वम्फेमि[23] अण्णं सुविणे वि णाइं ।।५०।।

अंगीकुणेज्जा सकिवं वयं मे, णाइं विलंबं अहुणा करेज्जा ।
दट्ठूण भूवस्स य अग्गहं णं, सिग्घं कुमारो य णमेइ किंचि ।।५१।।

दाऊण रज्जं कुमरस्स अद्धं, वारिज्जयं तेण समं कणीए ।
काऊण भूवो पउरं पमोयं, गच्छेइ चित्ते णिअगे तयाणिं ।।५२।।

दिण्णं वयं भो ! परिपालिऊण, चित्तं महप्पाण य तोसमेइ ।
णीयस्स चित्तं य लहेइ दुक्खं, दिण्णं वयं भो ! परिपालिउं य ।।५३।।

रज्जं लभित्ता वि चयेइ णाइं, धम्मं कुमारो सुहयं कयावि ।
पीअं य तोयं महुरं णईए, किं सो कया पाअइ सागरस्स ।।५४।।

इइ तइयो सग्गो समत्तो

२१. मम । २२. मयि । २३. कांक्षामि ।

४५. तुमने राजकुमारी को नेत्रदान करके मेरा दुःख नष्ट कर दिया है। मैं जीवन भर तुम्हारे इस उपकार को कभी नहीं भूलूंगा।

४६. मैं वचनानुसार तुम्हें आधा राज्य और अपनी रूपवती कन्या देता हूं। तुम उसको शीघ्र ग्रहण करके मेरे पर अनुग्रह करो।

४७. राजा की वाणी सुनकर विनयी और विवेकी राजकुमार ने राजा से कहा – मुझे राज्य और राजकुमारी की कांक्षा नहीं है। मैंने तो अपने कर्त्तव्य का पालन किया है।

४८. आप किसी अन्य व्यक्ति के साथ राजकुमारी का विवाह कर दें और सुखपूर्वक राज्य का पालन करें। मेरे में इसकी योग्यता नहीं है।

४९. कुमार की वाणी सुनकर राजा ने कहा—संसार में वह व्यक्ति मूढ माना गया है जो घर के आंगन में आई हुई लक्ष्मी और कामधेनु को दुत्कारता है।

५०. जिस व्यक्ति ने रत्न को देखा है क्या वह कभी पत्थर चाहता है? आप जैसे व्यक्ति को पाकर मैं स्वप्न में भी किसी अन्य की इच्छा नहीं करता हूं।

५१. कृपा कर मेरे वचन को स्वीकार करें। अब विलंब न करें। राजा के आग्रह को देखकर कुमार कुछ झुका।

५२. कुमार को आधा राज्य देकर तथा उसके साथ राजकुमारी का विवाह करके राजा अपने मन में बहुत प्रसन्न हुआ।

५३. दिये हुए वचन का पालन कर महान् व्यक्तियों का हृदय प्रसन्न होता है। नीच व्यक्तियों का मन दिये हुए वचन का पालन करने में दुःखी होता है।

५४. राज्य को प्राप्त करके भी कुमार सुखद धर्म को नहीं छोड़ता है। जिसने नदी का मधुर जल पीया है क्या वह समुद्र का खारा जल पीयेगा?

तृतीय सर्ग समाप्त

चउत्थो सग्गो

ठाउं[1] गवक्खे ललियंगभूवई, अप्पस्स चारू[2]णिवमंदिरस्स भो !।
पेच्छेइ सो रायपहम्मि एगया, मच्चा कुणेंता य गइं इओ तओ ॥१॥

पुव्वस्स मित्तो कुडिलो य सज्जणो, दिट्ठीपहे सो सहसा समागओ ।
दट्ठूण तं जायगरूवधारगं, चित्तं[3] पयायं[4] करुणा य माणसे ॥२॥

आहूय एगं पिसुणेइ किंकरं, गच्छेज्ज तुं रायपहम्मि तक्खणं ।
तं आणएज्जा इह दुत्ति जायगं, वच्चेइ जो रायपहम्मि संपयं ॥३॥

सोऊण वाणिं णिवइस्स डिंगरो, हेट्ठं गंतूण कहेइ जायगं ।
आगारिओ तुं अहुणा य राइणा, सद्धिं मए वच्चसु भूवमंदिरे ॥४॥

दासस्स वाणिं सुणिऊण सज्जणो, ठड्ढव्व जाओ लहिऊण सज्भसं ।
किं दुक्कडं मे विहियं य संपयं, आमंतिओ भूवइणा जओ अहं ॥५॥

आगारिओ भूवइणा कहं अहं, पुच्छेइ संभंतहियो य सज्जणो ।
णो किंचि जाणेमि अहं य संपयं, भिच्चा उ णिद्देसयरा य सामिणो ॥६॥

लद्धुं[5] भयं तेण समं य सज्जणो, वच्चेइ सिग्घं णिवमंदिरे जया ।
दट्ठूण रायं य भयो पलाइओ, किं भूवरूवम्मि सही विराइओ ॥७॥

पुच्छेइ चित्तं पगओ य सज्जणो, पण्हं इमं तं ललियंगभूहवं ।
रज्जं पलद्धं तुमए इणं कहं, णूणं तुमं होज्ज णरो सुभग्गवं ॥८॥

पण्हं सुणित्ता ललियंगभूहवो, भासेइ वाणिं सहसत्ति सज्जणं ।
धम्मप्पहावेण मए य संपयं, रज्जं पलद्धं इमं ण संसओ ॥९॥

---

१. छन्द-इंद्रवंशा, लक्षण-स्यादिन्द्रवंशाततजैरसंयुतैः । २. दीर्घ-ह्रस्वौ मिथो वृत्तौ (प्रा. व्या. ८।१।४) इति सूत्रेण 'चारू' इत्यभवत् । ३. चित्रम् । ४. प्रजातम् । ५. लब्ध्वा ।

चतुर्थ पर्व

१. एक दिन राजा ललितांग अपने सुंदर महल के झरोखे में बैठकर राजपथ में आने जाने वाले मनुष्यों को देख रहा था।

२. अचानक उसका पूर्व मित्र कुटिल सज्जन उसे दिखाई दिया। उसको याचक रूप में देखकर उसके मन में आश्चर्य हुआ और करुणा भी।

३. उसने एक नौकर को बुलाकर कहा—तुम शीघ्र राजमार्ग पर जाओ और उस याचक को यहां पर ले आओ जो अभी राजपथ पर जा रहा है।

४. राजा की वाणी सुनकर नौकर ने नीचे जाकर याचक से कहा—राजा ने तुम्हें अभी बुलाया है। तुम मेरे साथ राजप्रासाद में चलो।

५. दास की वाणी सुनकर सज्जन भयभीत होकर स्तब्ध हो गया। मैंने अभी क्या बुरा कार्य किया है जिससे राजा ने मुझे बुलाया है ?

६. सज्जन ने संभ्रान्त होकर पूछा—राजा ने मुझे क्यों बुलाया है ? नौकर ने कहा—मुझे कुछ मालूम नहीं है। भृत्यजन तो स्वामी के निर्देश का पालन करने वाले होते हैं।

७. भयभीत होकर सज्जन उसके साथ महल में गया। राजा को देख कर उसका भय दूर हो गया। क्योंकि उसका मित्र ही राजा के रूप में विराजमान था।

८. सज्जन ने विस्मित होकर राजा ललितांग से पूछा—तुमने यह राज्य कैसे प्राप्त किया ? निश्चित ही तुम भाग्यवान् हो।

९. प्रश्न सुनकर राजा ललितांग ने सज्जन से कहा—धर्म के प्रभाव से ही मैंने यह राज्य प्राप्त किया है, इसमें संशय नहीं है।

धम्मेण मच्चा य लहेंति णिच्छियं, अज्झत्थियं पोग्गलियं सुहं सया ।
धम्मप्पहावो भुवणे विचित्तो, धम्मेण हीणा ण लहेंति तं सुहं ।।१०।।

इत्थं चवेऊण समं य सज्जणं, साहेइ वत्तं घडियं य भूहवो ।
सोऊण सव्वं बहुलं य माणसे, वच्चेइ सो अच्छरियं य सज्जणो ।।११।।

वत्तं लवेऊण णिअं य भूवई, पुच्छेइ सो सुद्धहियो य सज्जणं ।
लद्धा कहं भो ! तुमए इमा ठिई, तुं आगओ अत्थ कहं य संपयं ।।१२।।

वित्तं य दिण्णं य तुहं य जं मए, णट्ठं कहं कुत्थ य तं य संपयं ।
सोऊण वाणिं णिवइस्स सज्जणो, दुक्खान्नियो सो पिसुणेइ भूहवं ।।१३।।

वत्तं ण पुच्छेज्ज णिवो ! तुमं महं, हं भग्गहीणो किर अत्थि माणवो ।
दाऊण दुक्खं चइउं[५] वणे तुमं, दंगं जया हं य तओ य पट्ठिओ ।।१४।।

मग्गे अणेगे मिलिऊण तक्करा, घेत्तूण वित्तं सयलं महं तया ।
दाऊण मं णीययणा य ताडणं, रण्णम्मि ते झत्ति समे पलाइया ।।१५।।
(जुग्गं)

वित्तेण हूणो अहयं करेमि किं, लग्गो तयाणिं पउरं विमंसिउं ।
णिस्साण मित्तो ण को वि विज्जए, कुव्वेंति सव्वे णिगडिं य सासयं १६

अण्णं ण मग्गं लहिऊण चिंतणे, इत्थं तया मे हिअयम्मि णिच्छियं ।
कुव्वेमि भिक्खाअ सयस्स पोसणं, भिक्खा-समो णो सरलो पहो परो १७

भिक्खाअ गच्छेमि अहं जया तया, गेहेसु मे केइ य देंति सक्कइं ।
मे विप्पयारं करिऊण दुज्जणा, णो देंति भिक्खं किर केइ माणवा १८

इत्थं सहेंतो णिहिलं सुहं दुहं, अकप्पिओ अत्थ अहं समागओ ।
भिक्खाअ जं लब्भइ तेण संपयं, कुव्वेमि हे णिद्ध ! सयस्स पोसणं १९

दिण्णं य दुक्खं पउरं मए तुहं, लद्धं मए से अहुणा इणं फलं ।
दुक्खं परं देइ णरो य जो सया, वच्चेइ दुक्खं भुवणम्मि णिच्छियं २०

---

५. त्यक्त्वा ।

१०. मनुष्य धर्म से निश्चित ही आध्यात्मिक और पौद्गलिक सुख को प्राप्त करते हैं। संसार में धर्म का प्रभाव विचित्र है। धर्महीन व्यक्ति उस सुख को प्राप्त नहीं करते हैं।

११. यह कहकर राजा ने सज्जन को सब घटित बात सुनाई। सुनकर सज्जन बहुत आश्चर्यचकित हुआ।

१२. अपनी बात कहकर शुद्धहृदयी राजा ने सज्जन से पूछा—तुम्हारी यह दशा कैसे हुई ? तुम यहां अभी कैसे आ गये ?

१३. मैंने तुम्हें जो धन दिया था वह कहां और कैसे नष्ट हो गया ? राजा की वाणी सुनकर सज्जन ने दु:खी होकर कहा—

१४-१५. राजन् ! तुम मेरी बात मत पूछो। मैं भाग्यहीन मनुष्य हूं। मैं तुम्हें दु:ख देकर और वन में छोड़कर जब वहां से नगरी की ओर रवाना हुआ तब मार्ग में अनेक चोर मिल गये। उन्होंने मेरे सब धन का हरण कर लिया और मुझे पीटकर वन में भाग गये।

१६. तब मैं धनहीन हो गया और सोचने लगा—मुझे क्या करना चाहिए ? क्योंकि धनहीन व्यक्ति का कोई मित्र नहीं होता। सभी उसका तिरस्कार करते हैं।

१७. चिंतन में अन्य मार्ग न सूझने पर मैंने यह निश्चय किया कि भिक्षा से ही उदर का पोषण करूंगा। क्योंकि भिक्षा के समान दूसरा सरल मार्ग नहीं है।

१८. जब मैं भिक्षा के लिए घरों में जाता हूं तब कई मनुष्य तो मुझे सत्कार-पूर्वक देते हैं और कई दुर्जन लोग मेरा तिरस्कार करके भी भिक्षा नहीं देते।

१९. इस प्रकार प्रचुर दु:ख, सुख सहन करता हुआ मैं यहां अकल्पित आ गया हूं। भिक्षा के द्वारा जो उपलब्ध होता है उसी से हे मित्र ! मैं अपना पोषण करता हूं।

२०. मैंने तुम्हें बहुत दु:ख दिया है उसी का अभी यह फल मिला है। जो मनुष्य सदा दूसरों को दु:ख देता है वह निश्चित ही संसार में दु:ख पाता है।

सव्वं खमेज्जा तुह मज्झ दुक्कडं, पुव्वं मए जं विहियं तए समं ।
णिच्चं महप्पा मणसा खमेंति तं, जाएइ जो तेहि खमं य माणवो ।।२१।।

वत्तं इमं से सुणिऊण भूवई, जाओ दयल्लो पउरो य माणसे ।
देंतो सणेहं पिसुणेइ तं तया, चिंतं कुणेज्जा अण किंचि संपयं ।।२२।।

सायं वसेज्जा इह मित्त ! संपयं, णो काइ पीला तुह अत्थ विज्जए ।
अप्पं सहावं परिवट्ट तुं परं, णिच्चं सहावो कुडिलो दुहप्पयो ।।२३।।

अंगीकयं तेण य तक्खणं तया, मित्तस्स भूवस्स इमं य भारइं ।
लोए सहावे परिवट्टणं परं, णिच्चं मणुस्साण कये य दुक्करं ।।२४।।

अग्गी सहावं णिययं चयेइ किं, णीरं सहावं णिययं जहाइ किं ।
सक्का सहावं चइउं तहेव णो, पाया हु लोयम्मि हवंति दुज्जणा ।।२५।।

चिट्ठेइ सम्मं कइवाहवासरा, पासे कुमारस्स य सो य सज्जणो ।
होही तया तस्स दढा ठिई तया, कुव्वेइ किं पेच्छह भे य पाढगा ।।२६।।

पेसेइ तं कज्जवसा य सज्जणं, भूवस्स पासं कुमरो अणेगहा ।
इत्थं धरावेण समं य संथवो, जाओ तयाणिं किर सज्जणस्स ।।२७।।

भूवस्स चित्ते णियणेउणेण सो, गच्छेइ सिग्घं पउरं य पच्चअं ।
पुच्छेइ भूवो वियणम्मि एगया, पण्हं विचित्तं य इमं य सज्जणं ।।२८।।

जामायराणं मह को य विज्जए, वंसो कहेज्जा य फुडं य सत्तरं ।
भूवस्स वाणिं सुणिऊण मच्छरी, भासेइ इत्थं अलियं य सज्जणो ।।२९

हं अत्थि[६] पुत्तो णरवाहणस्स जो, राया इयाणिं सिरिवासपत्तणे ।
तत्थेव भूवो ! दुहिआवई तुह, कुव्वेइ वासं अण अत्थ संसओ ।।३०।।

रूवेण चारू य अयं य दंसणे, णो सो कुलीणो य परं य विज्जए ।
णाइं सुरूवो सुकुलस्स कारणं, रूवेण हूणा कुलजा य माणवा ।।३१।।

---

६. अत्थिस्त्यादिना (प्रा. व्या. ८।३।१४८) सूत्रेण 'अत्थि' इति भवति ।

२१. मैंने तुम्हारे साथ पहले जो भी दुर्व्यवहार किया है तुम उन सबको माफ करो। क्योंकि महान् व्यक्ति उसे हृदय से क्षमा कर देते हैं जो उनसे क्षमा मांगते हैं।

२२. इस प्रकार उसकी बात सुनकर राजा बहुत दयार्द्र हो गया। उसे स्नेह देते हुए कहा—तुम मन में कुछ भी चिंता मत करो।

२३. तुम यहां सुख से रहो। तुम्हें यहां कुछ भी कष्ट नहीं होगा। लेकिन तुम अपने स्वभाव को बदलो क्योंकि कुटिल स्वभाव ही सदा दुःख देने वाला होता है।

२४. तत्काल सज्जन ने मित्र राजा की यह बात स्वीकार कर ली। लेकिन स्वभाव में परिवर्तन करना मनुष्यों के लिए सदा कठिन है।

२५. क्या अग्नि अपने स्वभाव को छोड़ती है? क्या जल अपने स्वभाव को छोड़ता है? उसी प्रकार प्रायः दुर्जन भी अपने स्वभाव को छोड़ने में समर्थ नहीं होते।

२६. सज्जन कुछ दिन तो कुमार के समीप में ठीक से रहा। लेकिन जब उसकी स्थिति दृढ हुई तब वह क्या करता है, पाठक देखें?

२७. कुमार उसे अनेक बार कार्य से राजा जितशत्रु (जो उसका ससुर है) के पास भेजता है। इस प्रकार सज्जन का राजा से परिचय हो गया।

२८. उसने अपनी निपुणता से राजा के मन में शीघ्र प्रचुर विश्वास प्राप्त कर लिया। एक दिन राजा ने एकान्त में सज्जन से यह विचित्र प्रश्न पूछा—

२९. मेरे जामाता का कौन-सा वंश है? मुझे शीघ्र स्पष्ट बताओ। राजा की बात सुनकर मत्सरी सज्जन इस प्रकार असत्य बोलता है—

३०. मैं श्रीवास नगर के राजा नरवाहन का पुत्र हूं। तुम्हारा जामाता भी वहीं का रहने वाला है, इसमें संदेह नहीं है।

३१. यह देखने में सुरूप है पर कुलीन नहीं। सुन्दर रूप अच्छे कुल का कारण नहीं होता क्योंकि सुरूपताहीन व्यक्ति भी कुलीन होते हैं।

चुच्छा[७] य जाई किर अस्स विज्जए, विज्जा इमा तेण तया कुओ गया ।
णूणं य चित्तम्मि भवाण संसओ, दत्तावहाणेण सुणेज्ज मे वयं ।।३२।।

मग्गम्मि कं पुण्णवसा य माणवं, सो लद्धसिद्धिं लहिऊण एगया ।
जाएइ विज्जं किर चित्तकारियं, लोयम्मि सक्को लहिउं जओ धणं ३३

काऊण सो से उवरिं किवं तया, विज्जा पदिण्णा इमिआ य णिच्छियं ।
किं किं महप्पाण किवाअ माणवा, लद्धुं समत्था भवणम्मि सासयं ३४

विज्जप्पहावेण कयं कणीअ भे[८], तेणं य सम्मं णयणं हु संपयं ।
विज्जप्पहावेण जगम्मि माणवा, पक्का[९] य कज्जं करिउं य दुक्करं ३५

जायेसु सम्मं णयणेसु ताअ भो !, वारिज्जयं तेण समं य संपयं ।
पुत्तीअ सिग्घं विहियं तए तया, पालेंति दिण्णं वयणं महाणरा ।।३६।।

मज्झं कुडुंबेण समं य एगया, जाओ अकम्हा कलहो भूवई ! ।
रुट्ठो य सव्वं चइऊण आगओ, ढुण्ढुल्लमाणो[१०] किर अत्थ संपयं ।।३७।।

दट्ठूण हं तेण दुअं य बुज्झिओ, णो किंचि जाईविसये अयं महं ।
साहेज्ज भूवं इइ चिंतिऊण सो, रक्खेज्ज पासे य णिअस्स संपयं ।।३८।।

इत्थं णिवेऊण णिवाय सज्जणो, अप्पम्मि ठाणम्मि तया समागओ ।
सोउं परं से वयणं य भूवई, लद्धूण कोवं हिअयम्मि चिंतिओ ।।३९।।

कुत्थत्थि मे उच्चयरो य विस्सुओ, लोए पवित्तो य कुलो य संपयं ।
कुत्थत्थि हा! णीययरो य संपयं, भो! णिंदणिज्जो दुहिआवइस्स मे ४०

उच्चा कुलेणं अहमा य माणवा, वच्चेंति पूयं भुवणम्मि ते सया ।
हूणा कुलेणं सुयणा वि माणवा, गच्छेंति णिंदं भुवणम्मि णिच्छियं ४१

गीयं महत्तं सुकुलस्स सासयं, मच्चा कुलीणा ण कुणेंति दुक्कडं ।
लद्धूण कट्ठं वि कया वि ते णरा, छड्डेंति मेरं ण कुलस्स णिच्छियं ४२

७. तुच्छा (तुच्छे तश्च-छौ वा—प्रा. व्या. ८।१।२०४) । ८. युष्माकम् । ९. समर्थाः (पक्का सहा समत्था···· पाइयलच्छी नाममाला-५२) । १०. भ्रमंतो (भ्रमेष्टिरिटिल्ल-ढुण्ढुल्ल·······प्रा. व्या. ८।४।१६१) ।

३२. इसकी जाति तुच्छ है। फिर भी इसने यह विद्या कहां से प्राप्त की, निश्चय ही आपके मन में ऐसा संशय हो सकता है। अतः सावधानी से मेरी बात सुनें।

३३. एक बार मार्ग में पुण्योदय से कोई सिद्धिप्राप्त मनुष्य इसे मिल गया। इसने उससे विस्मयकारी विद्या मांगी, जिससे धन प्राप्त किया जा सके।

३४. तब उसने इस पर दया करके यह विद्या प्रदान की। मनुष्य महान् व्यक्तियों की कृपा से संसार में सदा क्या-क्या नहीं प्राप्त कर सकता है ?

३५. विद्या के प्रभाव से उसने अभी तुम्हारी पुत्री के नेत्र ठीक कर दिये। विद्या के प्रभाव से मनुष्य संसार में दुष्कर कार्य करने में समर्थ हो सकते हैं।

३६. उसके नेत्र ठीक होने पर आपने शीघ्र ही उसके साथ पुत्री का विवाह कर दिया। क्योंकि महान् व्यक्ति दिये हुए वचन का पालन करते हैं।

३७. राजन् ! एक बार परिवार के साथ मेरा झगड़ा हो गया। तब मैं रुष्ट होकर सबको छोड़ घूमता हुआ यहां आ गया।

३८. मुझे देखकर वह तत्काल पहचान गया। यह मेरी जाति के विषय में राजा को कुछ न कह दे यह सोचकर उसने मुझे अपने पास रख लिया।

३९. इस प्रकार राजा को निवेदन कर सज्जन अपने स्थान पर आ गया। उसके वचन को सुनकर राजा मन में क्रुद्ध होकर सोचने लगा—

४०. कहां तो लोक में प्रसिद्ध श्रेष्ठ और पवित्र मेरा कुल है और कहां सबके द्वारा निन्दित मेरे जामाता का नीच कुल।

४१. कुल से श्रेष्ठ नीच मनुष्य संसार में सदा पूजा को प्राप्त करते हैं। कुल से हीन सज्जन मनुष्य भी निंदा को प्राप्त करते हैं।

४२. अतः सुकुल की महत्ता गाई गई है। कुलीन व्यक्ति बुरा कार्य नहीं करते। वे कष्ट पाकर भी कुल की मर्यादा को नहीं छोड़ते।

खेओ य मज्झ पउरो य माणसे, जाईअ तुच्छेण समं मए कडं ।
पुत्तीअ पाणिग्गहणं य सत्तरं, कुव्वेज्ज किं हंदि अहं य संपयं ।।४३।।

जामायरेणं अहुणा य तेण किं, कित्ती विणासं य लहे कुलस्स मे ।
णो किंचि मज्झ हिअयम्मि रोयए, जामायरो संपइ भो ! अओ अयं ४४

होज्जा जया अस्स कुलो पगासिओ, णिंदं तया काहिइ मज्झ माणवो ।
गच्छे पगासं अण से कुलो अओ, पुव्वं मए किंचि कुणेज्ज णिच्छिअं ४५

घायाइरित्तं अण को वि विज्जए, अण्णो उवायो किर अस्स संपयं ।
होज्जा कहं अस्स वहो य सत्तरं, किच्चं अहं तं य कुणेज्ज तक्खणं ४६

काऊण इत्थं य वहस्स जोअणं, वीसत्थमच्चा तुरिअं णिमंतिआ ।
तेंसि समायम्मि कहेइ भूवई, वाणिं इमं ता वियणम्मि सो तया ४७

रत्तीअ पच्छा दसवायणस्स जा, अज्जब्भिडेज्जा ललियंगमंदिरा ।
सो मारणिज्जो किर भे य सत्तरं, आणा इमा मज्झ अत्थि संपयं ४८

लद्धूण आणं णिवइस्स ते इमं, सव्वे वि चित्तं पउरं तया गया ।
भूवस्स भीईअ परं ण पुच्छिअं, जामाउणो किं य वहस्स कारणं ।।४९।।

दाऊण आणं य वहस्स दूसियं, भूवेण ता झत्ति तया विसज्जिया ।
पच्छा य एगो य पुणो य माणवो, विस्सासपत्तं तुरिअं णिमंतिओ ५०

से आगये तस्स य देइ गोवई, एगं य पत्तं लिहिऊण भासए ।
गंतूण पत्तं य इमं य सत्तरं, देज्जा तुमं भो ! ललियंगभूवइं ।।५१।।

णेऊण पत्तं ललियंगमंदिरं, गंतूण सो देइ य तं कुमारगं ।
दट्ठूण पत्तं ललियंगभूहवो, किं अत्थि अस्सि लिहियं ति उच्छुओ ५२

पत्तं पढेऊण णिवस्स मंदिरं, गंतुं हवेज्जा सहसत्ति सज्जिओ ।
दट्ठुं कहिं तं गमणस्स कामिअं, पुच्छेइ चित्तं लहिऊण ते पिया ।।५३

अस्सिं य कालम्मि कहिं पियो ! तुमं, कंखेसि गंतुं तुरिअं लवेज्जमं ।
वाणिं पियाए सुणिऊण भासए, गच्छेमि हं संपइ राय-मंदिरं ।।५४।।

किं तत्थ कज्जं य भवाण विज्जए, अस्सिं य कालम्मि णिसाअ संपयं ।
णाइं भवाणं गमणं य विज्जए, सेट्ठं इयाणिं य महं ति चिंतणं ५५

४३. मेरे मन में बहुत विषाद है कि मैंने तुच्छ जाति वाले के साथ पुत्री का शीघ्र विवाह कर दिया। हां! अब मैं क्या करूं?

४४. उस जामाता से क्या जिससे मेरे कुल की कीर्ति नष्ट हो? अतः यह जामाता मुझे किंचित् भी पसंद नहीं है।

४५. जब इसका कुल प्रकट होगा तब प्रजा मेरी निंदा करेगी। अतः इसका कुल प्रकट न हो इससे पूर्व ही मुझे कुछ करना चाहिए।

४६. मारने के अतिरिक्त इसका अन्य कोई उपाय नहीं है। अतः इसका वध कैसे हो सके वह कार्य मुझे करना चाहिए।

४७. इस प्रकार मन में मारने की योजना बनाकर उसने विश्वासपात्र मनुष्यों को बुलाया। उनके आने पर राजा ने उन्हें एकान्त में यह कहा—

४८. आज रात्रि में दस बजे के बाद जो कोई भी व्यक्ति ललितांगकुमार के महल से आये उसे तुम लोग मार डालना, यह मेरी आज्ञा है।

४९. राजा की यह आज्ञा पाकर वे सभी बहुत विस्मित हुए। पर राजा के भय से किसी ने यह नहीं पूछा कि जामाता को मारने का क्या कारण है?

५०. राजा ने उन्हें यह आज्ञा देकर शीघ्र ही विसर्जित कर दिया। तत्पश्चात् उसने एक विश्वासपात्र व्यक्ति को बुलाया।

५१. उसके आने पर राजा ने उसे एक पत्र लिख कर दिया और कहा—इस पत्र को ले जाकर तुम राजा ललितांगकुमार को दे दो।

५२. पत्र को लेकर वह ललितांगकुमार के महल में गया और उसे दे दिया। पत्र को देखकर राजा ललितांग यह जानने के लिए उत्सुक हुआ कि इसमें क्या लिखा हुआ है?

५३. पत्र को पढ़कर वह राजमहल जाने के लिए शीघ्र ही तैयार होने लगा। उसे कहीं जाने का इच्छुक देखकर उसकी पत्नी ने साश्चर्य पूछा—

५४. इस रात्रि में अभी आप कहां जाना चाहते हैं, मुझे कहें। प्रिया की वाणी सुनकर उसने कहा—मैं अभी राजमहल जा रहा हूं।

५५. रात्रि के इस समय अभी आपका वहां क्या काम है? इस समय आपका वहां जाना उचित नहीं है, ऐसा मेरा चिंतन है।

वाणिं पियाए सुणिऊण भासए, आगारिओ हं खु णिवेण संपयं ।
कज्जं य आवस्सयमत्थि णिच्छियं, वच्चेमि दाणिं तह हं अओ पिया! ५६

सोऊण वाणि य पियस्स सा इमं, णं मंतणं देइ तया कुमारगं ।
दाणिं य आवस्सयमत्थि चे कयं, मित्तं इमं पेसिअ राय-मंदिरं ।।५७।।

णाऊण सव्वं इर तेण संपयं, कज्जं य आवस्सयमत्थि चे पुणो ।
गच्छेज्ज खिप्पं य भवं य णिच्छियं, णो का वि बाहा य महं य विज्जए ५८
(जुग्गं)

कंताअ सोउं समयोइयं वयं, आहूय सिग्घं कुमरो य सज्जणं ।
भासेइ तं संपइ रायमंदिरं, गच्छेज्ज आवस्सयमत्थि किं कयं ।।५९।।

वाणिं सुणित्ता कुमरस्स सज्जणो, मोअं गओ सो पउरं य माणसे ।
लद्धा य तेणं य णिवेण सक्कई, सो मोयए तत्थ अओ य वच्चणे ६०

आणंदचित्तो गमणस्स उच्छुओ, हेट्ठं जया ओअरिओ य सज्जणो ।
बाहिट्ठिएहिं मणुएहि सत्तरं, सो गुत्तरूवेण तयाणि मारिओ ।।६१।।

सद्दं मुहा तस्स हयम्मि दारुणं, सोउं तया णिस्सरियं य सब्भुअं ।
बाहिं समागम्म तया कुमारगो, पुप्फावईए य समं य विलोयए ।।६२।।

हंतूण तं झत्ति य राय-सासणा, मच्चा तया ते वहगा पलाइया ।
दट्ठुं मयं तं य तयाणि सज्जणं, पुप्फावई सा पइणो णिवेयए ।।६३।।

गच्छेज्ज कंतो ! जइ तं य संपयं, होज्जा तया किं य फुडं य विज्जए ।
णिद्धं हयं पेच्छिय दुत्ति माणसे, जाओ य कुद्धो ललियंगभूवई ।।६४।।

आगम्म पासायओ झत्ति बाहिरं, सेणा णिआ सज्जिय तेण संगरो ।
उग्घोसिओ भूवइणा समं इणं, सोऊण सव्वे वि गया य विम्हयं ६५

दट्ठूण गेहम्मि तयाणि आहवं, वच्चेइ दुक्खं य जियारिभूहवो ।
आगम्म पासं दुहिआवइं णिअं, पुच्छेइ भे कोत्थि कुलो य संपयं ६६

सोऊण पण्हं कुविओ कुमारगो, साहेइ इत्थं णिवइं य भारइं ।
अस्सुत्तरं मे अहुणा भुयाबलं, तुज्झं य देइस्सइ दाणि णिच्छियं ।।६७

५६. पत्नी की वाणी सुनकर उसने कहा— राजा ने मुझे अभी बुलाया है, निश्चित ही कोई आवश्यक कार्य है, अत: मैं वहां जा रहा हूं ।

५७-५८. पति की बात सुनकर उसने ललितांगकुमार को यह सलाह दी कि यदि आवश्यक कार्य है तो इस मित्र (सज्जन) को सब जानने के लिए राजमहल भेज दें । फिर भी यदि आवश्यक कार्य हो तो आप जरूर जायें, मुझे कोई बाधा नहीं ।

५९. पत्नी के समयोचित वचन को सुनकर ललितांगकुमार ने मित्र सज्जन को बुलाकर कहा—तुम शीघ्र राजमहल जाओ । कोई कार्य है ।

६०. ललितांगकुमार के वचन को सुनकर सज्जन मन में बहुत प्रसन्न हुआ । क्योंकि उसने राजा (जितशत्रु) से सत्कार प्राप्त किया था । अत: वह वहां जाने में प्रसन्न था ।

६१. प्रसन्नचित्त और गमन का इच्छुक सज्जन जब नीचे उतरा तब बाहर छिपे हुए व्यक्तियों ने उसे गुप्तरूप से मार डाला ।

६२. मारने पर उसके मुख से भयंकर शब्द निकला । उसे सुनकर विस्मत हो ललितांगकुमार ने पुष्पावती के साथ बाहर आकर देखा ।

६३. राजा की आज्ञा से उसे शीघ्र मारकर वे सभी वधक भाग गये । सज्जन को मरा हुआ देखकर पुष्पावती ने पति से यह निवेदन किया—

६४. प्रिय ! यदि आप अभी जाते तो क्या होता, स्पष्ट है । मित्र को मरा हुआ देखकर राजा ललितांग मन में कुपित हुआ ।

६५. महल से बाहर आकर उसने अपनी सेना सज्जित की और राजा (जितशत्रु) के साथ युद्ध की घोषणा कर दी । सुनकर सभी विस्मित हुए ।

६६. घर में युद्ध छिड़ा देखकर राज़ा जितशत्रु बड़ा दु:खी हुआ । वह अपने जामाता के पास आया और पूछा—तुम्हारा कुल कौन सा है ?

६७. प्रश्न सुनकर कुपित हुए ललितांगकुमार ने कहा—मेरा भुजाबल ही तुम्हें इसका निश्चित उत्तर देगा ।

इत्थं कुमारस्स णिसम्म भारइं, मंती गओ अच्छरिअं य माणसे ।
कोवस्स बीयं य किमत्थि संपयं, तेणं तयाणिं णिवई य पुच्छिओ ६८

णाऊण सव्वं य रुसस्स कारणं, भूवस्स पासा सइवो वियक्खणो ।
आगम्म सिग्घं ललियंग-अंतिये, भासेइ सच्चं घडणं य णिब्भयं ।।६९।।

णच्चा जहत्थं सयलं ठिइं गओ, कोहो कुमारस्स तहेव णासगं ।
आइच्चमालिस्स समागये जहा, वच्चेइ धंतं तुरिअं विणासगं ।।७०।।

भूवेण णायं य जया य संपयं, जाओ विभंतो किर सज्जणेण हं ।
पच्छाणुतावं हिअये तयाणि सो, भूयं करेंतो सविहे समागओ ।।७१।।

पाए पडेऊण खमाअ सो तया, सिग्घं कुमारेण करेइ पत्थणं ।
भासेइ सो गग्गरमाणसो य तं, मज्झावराहं य खमेज्ज संपयं ।।७२।।

इत्थं य तेसिं विलयो य संसओ, णेहो य जाओ हिअये परोप्परं ।
पायो दविट्ठं य पयाइ माणवो, लोए सया संसयओ य णिच्छियं ७३

जामाउणो पेच्छिअ से परक्कमं, मोओ पयायो बहुलो य माणसे ।
णेहं य देंतो पउरं य सक्कइं, रज्जं तयाणिं य सुहं कुणेइ सो ।।७४।।

रज्जं कुणेंतस्स णिवस्स माणसे, वेरग्गभावा य जणीअ एगया ।
दाऊण रज्जं दुहिआवइस्स सो, गेण्हेइ दिक्खं इर कम्मणासिणिं ।।७५।।

लद्धण रज्जं ललियंगभूवई, वांछेइ काउं पियरं य धम्मियं ।
ते संति लोए विरला य अंगया, चेट्ठंति काउं पियरं य धम्मियं ७६

वित्तेण सेव्वं पियरस्स संपयं, कुव्वेंति लोए बहुणो य दारगा ।
सेवंति धम्मेण परं य ता सया, ते संति लोए विरला य अंगया ।।७७

पुप्फावईए य समं समागओ, मच्चेहि सद्धिं पिउणो णिवेसणे ।
एगं णरं पेसिअ तेण सूइया, तायं तयाणिं य णिअस्स आगई ।।७८।।

सोऊण पुत्तागमणं य भूवई, जाओ पसण्णो पउरो य माणसे ।
णेऊण मच्चा बहुणो य सम्मुहे, काउं समाओ[10] किर तस्स सागयं ७९

१०. समागतः ।

६८. इस प्रकार ललितांगकुमार के वचन को सुनकर मंत्री के मन में विस्मय हुआ। तब उसने राजा से पूछा—इनके कुपित होने का क्या कारण है ?

६९. राजा के पास क्रुद्ध होने का कारण जानकर विचक्षण मंत्री ललितांगकुमार के पास आया और निर्भयतापूर्वक सत्य घटना बताई।

७०. यथार्थ स्थिति को जानकर ललितांगकुमार का क्रोध उसी प्रकार नष्ट हो गया जिस प्रकार सूर्य के आने पर अन्धकार।

७१. जब राजा को मालूम हुआ कि सज्जन ने मुझे भ्रांत बना दिया था तब वह हृदय में बहुत पश्चाताप करता हुआ राजा ललितांगकुमार के पास आया।

७२. उसके पैरों में पड़कर उसने क्षमा मांगी और गद्‌गद् मन से बोलने लगा—तुम मेरे अपराध को क्षमा करना।

७३. इस प्रकार उनका संदेह दूर हो गया और परस्पर प्रेम उत्पन्न हुआ। मनुष्य प्रायः संशय से निश्चित ही दूर चला जाता है।

७४. जामाता के पराक्रम को देखकर उसके मन में बहुत प्रसन्नता हुई। वह उसे प्रचुर स्नेह और सत्कार देता हुआ सुखपूर्वक राज्य करने लगा।

७५. राज्य करते हुए एक बार राजा के मन में वैराग्य उत्पन्न हुआ। उसने जामाता को राज्य देकर कर्मों को नष्ट करने वाली दीक्षा ग्रहण की।

७६. राज्य प्राप्त करके राजा ललितांग अपने माता-पिता को धार्मिक बनाना चाहता है। संसार में ऐसे पुत्र विरले हैं जो माता-पिता को धार्मिक बनाने की चेष्टा करते हैं।

७७. धन से माता-पिता की सेवा करने वाले संसार में बहुत पुत्र हैं। पर जो उनकी धार्मिक सेवा करते हैं ऐसे पुत्र संसार में विरले हैं।

७८. पुष्पावती तथा मनुष्यों के साथ वह पिता की नगरी में आया। एक आदमी को भेजकर उसने पिता को अपने आगमन की सूचना दी।

७९. पुत्र के आगमन को सुनकर राजा मन में बहुत हर्षित हुआ। वह उसका स्वागत करने के लिए अनेक मनुष्यों के साथ सम्मुख आया।

दट्ठूण पुत्तं णिअगं चिराय सो, जाओ णिवो गग्गरमाणसो बहू ।
लद्धुं पियं जो ण हुवेइ माणवो, चित्ते पसण्णो अण सो पियो जणो ८०

णेऊण पुत्तं णिअगे णिवेसणे, सो हट्ठतुट्ठो णिवई समागओ ।
सोऊण सव्वं घडणं य तेण सो, जाओ सुधम्मम्मि रयो य सत्तरं ८१

दाऊण रज्जं ललियंगभूवइं, दिक्खं दुयं गिण्हइ भूहवो सो ।
सारं सया माणवजीवियस्स णं, चाअस्स मग्गम्मि होज्ज भो ! गई ८२

लद्धूण रज्जं य दुवे वि णो मयं, गच्छेइ दाणिं ललियंगभूहवो ।
जुग्गं य लोगम्मि मयस्स किं वि णो, मूढो मणुस्सो कुणइ त्ति विम्हयं ।।८३।।

काउं तया धम्मरया य माणवा, कुव्वेइ चेट्ठं ललियंगभूवई ।
जो जारिसो होइ य अत्थ तारिसा, काउं पयत्तं य कुणेइ सो परा ८४

दट्ठूण धम्मम्मि रयं य भूवइं, होहीअ धम्माहिमुहा य माणवा ।
भूवो जहा होइ जगम्मि सासयं, मच्चा तहा होंति तयाणि णिच्छियं ८५

इत्थं मणुस्सा कुणिऊण धम्मिया, तेसिं य सम्मं स करेइ पालणं ।
वेरग्गभावं लहिऊण अंतिमे, कालम्मि दिक्खं कुसुमीकुणेइ सो ।।८६।।

दिक्खं लहेऊण वि सुद्धभावओ, पालेइ मच्चो अण अत्थ जो सया ।
अम्मो हु सा तस्स अहो गामिणी, हुवेइ णूणं य जिणेहि साहियं ।।८७।।

सुद्धं चरित्तं सइ तेण पालियं, लद्धूण अंते मरणं य पंडियं ।
णं माणुसं सो चइऊण विग्गहं, वच्चेइ णायं[11] य विसुद्धभावओ ।।८८।।

आउं य पुण्णं करिऊण सो तओ, खेत्ते विदेहे लहिऊण सो जणिं ।
कम्माणि सव्वाणि विणस्स सत्तरं, मोक्खं लहिस्सेइ य सायदायगं ।।८९

इइ चउत्थो सग्गो समत्तो

इइ विमलमुणिणा विरइयं पज्जप्पबंधं ललियंगचरियं समत्तं

११. नाकम्-स्वर्गम् ।

८०. चिरकाल से अपने पुत्र को देखकर राजा का मन बहुत गद्‌गद् हुआ। जो व्यक्ति अपने प्रिय जन को पाकर प्रसन्न नहीं होता वह प्रियजन नहीं है।

८१. पुत्र को अपने नगर में लाकर राजा प्रसन्न हुआ। उससे सब घटना सुनकर वह शीघ्र धर्म में रत हो गया।

८२. ललितांगकुमार को राज्य देकर उसने शीघ्र दीक्षा ग्रहण कर ली। मनुष्य-जीवन का यही सार है कि त्याग-मार्ग में गति हो।

८३. दोनों राज्यों को पाकर भी राजा ललितांग अभिमान नहीं करता है। इस संसार में अभिमान-योग्य कुछ भी नहीं है, फिर भी मूढ व्यक्ति अभिमान करता है, यह आश्चर्य है।

८४. राजा ललितांग मनुष्यों को धार्मिक बनाने की चेष्टा करता है। जो जैसा होता है वह दूसरों को वैसा करने का प्रयत्न करता है।

८५. राजा को धर्म में रत देखकर मनुष्य भी धर्माभिमुख हो गये। संसार में जैसा राजा होता है प्रजा भी तब वैसी ही होती है।

८६. इस प्रकार मनुष्यों को धार्मिक बनाकर वह सुखपूर्वक उनका पालन करता है। अन्त में वैराग्यभाव को प्राप्त कर वह दीक्षा ग्रहण करता है।

८७. जो व्यक्ति दीक्षा ग्रहण करके भी शुद्ध भाव से उसका पालन नहीं करता तो आश्चर्य है दीक्षा भी उसके लिए अधोगति का हेतु बनती है, ऐसा तीर्थंकरों ने कहा है।

८८. उसने सदा शुद्ध चरित्र का पालन किया। अन्त में पंडित मरण प्राप्त कर, इस मनुष्य- देह को छोड़कर वह पवित्र भावों के कारण स्वर्ग में उत्पन्न हुआ।

८९. वहां से आयुष्य पूर्ण कर वह महाविदेह क्षेत्र में जन्म लेकर, सब कर्मों को नष्ट कर मोक्ष प्राप्त करेगा।

चतुर्थ सर्ग समाप्त

विमलमुनिविरचित पद्यप्रबंधललितांगचरित्र समाप्त

देवदत्ता

कथावस्तु

देवदत्ता रोहीतक नगर के गाथापति दत्त की पुत्री थी। उसकी माता का नाम कृष्णश्री था। एक बार यौवनप्राप्त देवदत्ता सखियों के साथ अपने घर की छत पर स्वर्ण-गेंद से खेल रही थी। उसी समय उस नगर का राजा वैश्रमणदत्त कुछ व्यक्तियों के साथ अश्वक्रीडा के लिए जाता हुआ उधर से निकला। राजा की दृष्टि देवदत्ता पर पड़ी। उसके रूप, सौंदर्य और लावण्य को देखकर वह मुग्ध हो गया। उसने अपने अनुचरों से पूछा—यह कन्या कौन है ? किसकी पुत्री है ? तब दत्त गाथापति के परिवार से परिचित एक व्यक्ति ने कन्या का परिचय दिया। राजा अपने महलों में आ गया। वह देवदत्ता को अपने पुत्र पुष्यनंदी की वधू बनाने का स्वप्न देखने लगा। उसने देवदत्ता की मांग के लिए कुछ विश्वस्त पुरुषों को दत्त गथापति के घर भेजा। वे उसके घर गये। दत्त गाथापति ने उसका सत्कार किया और आने का कारण पूछा। उन्होंने राजा की भावना रखते हुए युवराज पुष्यनन्दी के लिए देवदत्ता की मांग की। दत्त गाथापति ने उसे स्वीकार कर ली। वे पुनः राजा के समीप आये और उसे समस्त वृत्तान्त सुना दिया। राजा बहुत प्रसन्न हुआ। उसने उन्हें प्रचुर परितोषिक देकर विसर्जित कर दिया।

शुभ मुहूर्त्त में युवराज पुष्यनन्दी और देवदत्ता का पाणिग्रहण हो गया। दोनों आनंदपूर्वक रहने लगे। कालान्तर में राजा वैश्रमणदत्त का स्वर्गवास हो गया। युवराज पुष्यनन्दी राजा बना। पिता की मृत्यु के बाद वह अपनी माता की विशेषरूप से सेवा करने लगा। वह प्रतिदिन उसे नमस्कार करता। अभ्यंगन (तेल मालिश) आदि कराकर उसे सुगंधित जल से स्नान करवाता और अपने हाथ से उसे भोजन करवाता। तत्पश्चात् वह अपना समस्त कार्य करता। उसे देवदत्ता के समीप जाने का समय ही नहीं मिल पाता था। एक दिन देवदत्ता ने सोचा—राजा पुष्यनन्दी अपनी माता की सेवा में विशेष रूप से संलग्न रहता है, अतः उसे मेरे समीप आने का समय ही नहीं मिलता। मेरे सुख में बाधक यह राजमाता ही है, अतः क्यों न इसे मार दूं। इस प्रकार विचार कर वह राजमाता को मारने के लिए उचित

अवसर की प्रतीक्षा करने लगी। एक दिन राजमाता सोई हुई थी। वहां कोई नहीं था। सहसा देवदत्ता उधर से निकली। उसने राजमाता को एकाकी वहां सोई हुई देखा। उसे मारने का उचित अवसर देखकर वह रसोई घर में गई। एक लोहदंड को गर्म कर, उसे लेकर राजमाता के पास आई और उसे उसके गुह्यप्रदेश में घुसेड़ कर चली गई। राजमाता के मुख से चीख निकली और वह मर गई। चीख सुनकर आस-पास काम करने वाली दासियां दौड़कर आईं। उन्होंने रानी देवदत्ता को जाते हुए देखा। उनके मन में विचार आया—देवदत्ता राजमाता के पास न जाकर इधर कैसे जा रही है ? वे राजमाता के पास आईं। उसे मृत पाया। उन्होंने सोचा—इसे रानी देवदत्ता ने ही मारा है। ऐसे चिंतन कर वे राजा पुष्यनंदी के समीप आईं और कहा—आपकी माता को रानी देवदत्ता ने मार दिया है। यह सुनकर राजा मूर्च्छित हो गया। उपचार करने पर उसकी मूर्च्छा दूर हो गई। वह राजमाता के पास आया और उसका दाह संस्कार किया।

महलों में आने के बाद राजा पुष्यनन्दी के मन में विचार आया—रानी देवदत्ता ने वह कार्य किया है जो सामान्य स्त्री नहीं कर सकती। अतः इसे इस प्रकार का दंड देना चाहिए जिससे जनता को शिक्षा मिले। ऐसा सोचकर उसने देवदत्ता को बुलाया और उसकी भर्त्सना करते हुए कहा—तुम मेरे महलों में रहने योग्य नहीं हो। तुमने सास की सेवा करना तो दूर प्रत्युत उसे मार दिया है। अतः तुम्हें जीने का अधिकार नहीं है। ऐसा कहकर उसने राजपुरुषों से कहा—इस दुष्टा को नगर के चौराहे पर ले जाओ और मनुष्यों से कहो—इस दुष्ट रानी ने राजा पुष्यनन्दी की माता को मार दिया है। अतः राजा ने इसे इस प्रकार का दंड दिया है, ऐसा कहकर इसके नाक, कान काटकर इसको अवकोटक बंधन (रस्सी से गले और हाथ को मोड़कर पृष्ठ भाग के साथ बांधना) से बांध कर, इसका मांस काटकर, इसको वह मांस खिलाकर शूली पर चढ़ा कर मार देना।

राजपुरुष रानी देवदत्ता को नगर के चौराहे पर ले गये और राजा के कथनानुसार उसे दंडित करने लगे। उसी समय श्रमण भगवान् महावीर के प्रमुख शिष्य गणधर गौतम भिक्षार्थ नगर में जा रहे थे। उन्होंने राजपुरुषों द्वारा दंडित की जाती हुई देवदत्ता को देखा। उसे देखकर उनके मन में विचार आया—यह स्त्री कौन है ? इसने पूर्वभव में ऐसे कौन से कर्म किये

हैं जिससे इस प्रकार का दुःख भोग रही रही है ? भिक्षा लेकर वे पुनः भगवान् महावीर के पास आये और उनके समक्ष अपने विचार रखे। तब भगवान् ने देवदत्ता के पूर्वभव का वर्णन करते हुए राजा सिंहसेन के विषय में जानकारी दी। उसे सुनकर गणधर गौतम ने पूछा—यह देवदत्ता मर कर कहां उत्पन्न होगी ? तब भगवान् ने उसके आगामी भवों का वर्णन करते हुए कहा—वह अनेकानेक भव करती हुई अन्त में महाविदेह क्षेत्र में उत्पन्न होकर अजरामर पद प्राप्त करेगी।

पढमो सग्गो

मंगलायरणं

अणंतबलस्स[1] सामिं, मग्गदंसगं चरमं तित्थयरं ।
सरिउं पाइअगिराअ, रएमि देवदत्ताचरिअं ॥१॥

णिअकयकम्माण फलं, कहं लहेइ मणुओ इह लोअम्मि ।
णिदंसणं तस्स अत्थि, इणं 'देवदत्त'[2] त्ति चरिअं ॥२॥

अस्सि[3] जंबूदीवे, अहेसि[4] पुरा एगं य णिवेसणं ।
रोहीअयो त्ति णामं, रिद्धं[5] समिद्धं[6] य त्थिमिअं[7] ॥१॥

णिवसंति तत्थ इब्भा, अणेगे कुलीणा धीसंपन्ना ।
आसि तेसु य एगो, दत्तणामो य गाहावई ॥२॥

भारिआ तस्स धीरा, कण्हसिरीणामेगा रूववई ।
गेहकज्जेसु दक्खा, आसि गंभीरा य गुणवई ॥३॥

ताइ जढलेण[8] जाया, कालंतरे एगा चारुकण्णा ।
दिण्णो ताए णामो, 'देवदत्त' त्ति य पिअरेहिं ॥४॥

तं पालेउं तेहिं, रक्खिआ य पंच धायमायाओ[9] ।
कुणंति पालणं ताअ, कायव्वदक्खाउ मणेणं ॥५॥

तया वि णिअकायव्वं, ण पम्हुसेइ[10] कज्जबहुला जणणी ।
भरेइ य सुसक्कारा, ताए जागरूअत्तणेण ॥६॥

---

१. आर्याछंद । २. देवदत्ता इति । ३. आर्याछंद । ४. आसीत् ५. ऋद्धः- भवनादि की प्रचुरता से युक्त । ६. समृद्धः—धन-धान्यादि से परिपूर्ण । ७. स्तिमितः-स्वचक्र और परचक्र के उपद्रवों से रहित । ८. उदरेण (हरिद्रादौ लः-प्रा० व्या० ८।१।२५४) इति सूत्रेण जढरं, जढलं द्वौ भवतः । ९. पांच धायमाता—(१) अंकधात्री—गोद में उठाने वाली । (२) क्षीरधात्री—दूध पिलाने वाली । (३) मज्जनधात्री—स्नान कराने वाली । (४) क्रीडापन-धात्री—क्रीडा कराने वाली । (५) मंडनधात्री—शृंगार कराने वाली । १०. विस्मरति (विस्मुः पम्हुस - विम्हर-वीसराः-प्रा० व्या० ८।४।७५) ।

प्रथम सर्ग

मंगलाचरण

१. अनंतबल के धारक, मार्गद्रष्टा, अन्तिम तीर्थंकर भगवान् महावीर का स्मरण कर मैं प्राकृत भाषा में देवदत्ता-चरित्र की रचना करता हूं ।

२. मनुष्य अपने कृत कर्मों का फल किस प्रकार इस संसार में प्राप्त करता है उसका उदाहरण यह देवदत्ता-चरित्र है ।

१. प्राचीन काल में इस जम्बूद्वीप में रोहीतक नामक एक ऋद्ध, समृद्ध और स्तिमित नगर था ।

२. वहां अनेक धनवान्, कुलीन और बुद्धिमान् व्यक्ति रहते थे । उसमें एक दत्त नामक गाथापति था ।

३. उसकी पत्नी का नाम कृष्णश्री था । वह रूपवती, गृहकार्य में निपुण, धीर, गम्भीर और गुणवती थी ।

४. कालांतर में उसके उदर से एक सुंदर कन्या का जन्म हुआ । माता-पिता ने उसका नाम देवदत्ता रखा ।

५. उसका पालन करने के लिए उन्होंने पांच धायमाताओं को रखा । वे उसका मन से पालन करने लगी ।

६. बहुत कार्य होने पर भी माता अपने कर्तव्य को नहीं भूली । वह सदा जागरूकता पूर्वक उसमें सुसंस्कार भरती थी ।

लद्धूण वि संताणा, जे णाइं देंति ता सुसक्कारा ।
फिट्टंति[11] ते मणुस्सा, अप्पकायव्वपालणेण ॥७॥

अंबाए सा विहिआ, गेहकज्जेसु तयाणि बहुकुसला ।
अत्थि विलयाणं[12] सया, घरकज्जं च्चिअ पमुहं कयं ॥८॥

णिलयकज्जेसु दक्खा, णारी लहेइ पइ-गिहे सक्कइं ।
होइ सव्वेसिं पिआ, अण्णहा सा पयाइ णिगडिं ॥९॥

सणिअं सणिअं लहेइ, तारुण्णं जया सा देवदत्ता ।
वड्ढइ ताए रूवं, बीआए चंदो विव तया ॥१०॥

एगया सा कीलेइ, विहूसियसरीरा सहीहिं समं ।
सुवण्णस्स गेंदुएण, मोएण घरस्सुवरिभागे ॥११॥

तयाणि तेण मग्गेण, अब्भिडिओ[13] तत्थट्ठो पयावई ।
धम्मिट्ठो य सुसीलो, वेसमणदत्तणामंकिओ ॥१२॥

हयकीलं वच्चंतो, आसमारोहिअ अणुअरेहि समं ।
अकम्हा से दंसणे, समागया सयराहमेव ॥१३॥

सहीहिं समं किड्डं, कुणमाणी सा कण्हसिरी-तणुआ ।
दट्ठुआण सुंदेरं[14], ताए हुवीअ सो य मुद्धो ॥१४॥
(तीहिं विसेसगं)

पुच्छेइ सो अणुअरा, का अत्थि इमिआ कस्स य कुमारी ।
सोऊण इणं पण्हं, भूवस्स तया तेसु एगो ॥१५॥

दत्तपरिअर-परिइओ, मच्चो णिवेअइ इणं भूवइणो ।
विलसइ इमिआ कण्णा, दत्तगाहावइणो पुत्ती ॥१६॥

जो अम्हाणं णयरे, अत्थि लद्धपइट्ठो य धणीसरो ।
अंगया इमिआ तस्स, 'देवदत्त' त्ति णामंकिआ ॥१७॥
(तीहिं विसेसगं)

---

११. भ्रश्यन्ति (भ्रंशेः फिड फिट्ट...... प्रा० व्या० ८।४।१७७) । १२. वनिता (वनिताया विलया— प्रा० व्या० ८।२।१२८) । १३. समागतः (समा अब्भिडः- प्रा० व्या० ८।४।१६५) । १४. सौंदर्यम् (उत् सौन्दर्यादौ— प्रा० व्या० ८।१।१६०) ।

७. जो व्यक्ति संतान को प्राप्त करके भी उसे सुसंस्कार नहीं देते वे निश्चित ही अपने कर्तव्य से च्युत होते हैं।

८. माता ने उसे गृहकार्य में बहुत कुशल बनाया। क्योंकि गृहकार्य ही स्त्रियों का प्रमुख कार्य है।

९ गृहकार्यों में दक्ष स्त्री ही ससुरालय में आदर पाती है और सबकी प्रिय होती है। अन्यथा वह तिरस्कार पाती है।

१०. शनैः शनैः जब देवदत्ता तरुण हुई तब उसका रूप द्वितीया के चन्द्रमा की तरह बढने लगा।

११. एक बार वह छत के ऊपर सहेलियों के साथ सोने की गेंद से खेल रही थी।

१२-१३-१४. उसी समय वहां का राजा वैश्रमणदत्त अश्व क्रीडा के लिए जाता हुआ अनुचरों के साथ उधर से निकला। अकस्मात् सखियों के साथ क्रीडा करती हुई देवदत्ता पर उसकी दृष्टि पड़ी। वह उसके सौंदर्य को देखकर मुग्ध हो गया।

१५-१६-१७. उसने अपने अनुचरों से पूछा—यह कौन है ? और किसकी पुत्री है ? राजा का प्रश्न सुनकर दत्त गाथापति के परिवार से परिचित एक अनुचर ने कहा—यह कन्या हमारे नगर के लब्धप्रतिष्ठ और धनीश्वर दत्त गाथापति की पुत्री है। इसका नाम देवदत्ता है।

अत्थि इमिआ दारिआ, रूवसंपन्नेण समं सुधीरा ।
गंभीरा मिउचित्ता, कज्जणिउणा य विणयसीला ।।१८।।

काहिइ जो उवयामं, इमाए समं सो होहिइ धण्णो ।
कणी रूवसंपन्ना, लोगे बहुला ण गुणजुत्ता ।।१९।।

सुणिआण तस्स वाणिं, भूवइणा ण उणा[15] किमवि जंपिअं ।
कयाइ विणा वियारं, अण किं वि बोल्लेंति महप्पा ।।२०।।

वाह[16]-किड्डं काऊण, मोअचित्तेण तयाणिं भूहवो ।
तुरिअं णिअ-पासाये, समागओ अणुअरेहि समं ।।२१।।

इइ पढमो सग्गो समत्तो

---

१५. न पुनः (प्रा० व्या० ८।१।६५) । १६. अश्व (आसो सत्ती वाहो·······
पाइयलच्छी नाममाला-४५) ।

१८. यह सुरूपता के साथ-साथ धीर, गंभीर, मृदुहृदया, कार्यकुशल और विनयवती है ।

१९. जो इसके साथ विवाह करेगा वह धन्य होगा । क्योंकि संसार मे रूप-संपन्न कन्याएं बहुत हैं लेकिन गुणवती नहीं ।

२०. उसकी बात सुनकर राजा ने पुनः कुछ नहीं कहा । क्योंकि महान् व्यक्ति बिना विचारे कुछ नहीं बोलते ।

२१. अश्वक्रीडा करके राजा प्रसन्नमन से अनुचरों के साथ शीघ्र ही अपने महलों में आ गया ।

प्रथम सर्ग समाप्त

बीओ सग्गो

दट्ठूण[1] वत्थुं रुइरं मणुस्सो, हुवेइ मुद्धो तुरिअं य तस्सि ।
लद्धुं पयासं य कुणेइ तं य, अयं सहावो मणुआण अत्थि ।।१।।

दत्तस्स पुत्तिं य णिहालिऊण, णिवो विआरेइ मणम्मि इत्थं ।
जुग्गा इमा अत्थि य सव्वहा य, महं कुमारस्स कये इयाणिं ।।२।।

पूसाइणंदीअ[2] समं इमाअ, हुवेज्ज सिग्घं जइ रे[3] विवाहं ।
धण्णो हुविस्सेइ कुलो वि मज्झ, हुवेज्ज धण्णो कुमरो वि मज्झ ।।३।।

अम्हं[4] पुरीए बहुला य कण्णा, परं इमाए सरिसा ण का वि ।
चेट्ठं अओ हं तुरिअं कुणिस्सं, इमं कुमारस्स कये पलद्धं ।।४।।

इत्थं य चित्तम्मि विआरिऊण, णिमंतिआ अंतरिआ मणुस्सा ।
साहेइ भूवो य इमं य ता य, महं आणाअ गमेज्ज तुब्भे ।।५।।

दत्तस्स गाहावइणो य गेहे, पुरीअ जो लद्धपइट्ठिओ त्थि ।
गंतूण भे[5] तत्थ कहेज्ज तं य, चवेमि[6] जं संपइ हं य तुब्भे ।।६।।
(जुग्गं)

वम्फेइ[7] राया तुह देवदत्तं, कण्णिं इयाणिं किर वग्गुरूवं ।
धीरं सुसीलं इर कज्जदक्खं, णिअस्स पुत्तस्स कयम्मि णूणं ।।७।।

कंखा हुवेज्जा जइ तुज्झ अत्थ, कुणेज्ज ताए तुरिअं विवाहं ।
पूसाइणंदीकुमरेण सद्धिं, ण अत्थि मे को वि बलप्पओगो ।।८।।

लद्धूण आणं य णिवस्स इत्थं, णरा सुदक्खा य समागया ते ।
दत्तस्स गाहावइणो घरम्मि, हवंति णिद्देसयरा य भिच्चा ।।९।।

दट्ठूण दत्तो य समागया ता, णिअम्मि गेहम्मि य तक्खणं सो ।
गंतूण णेसिं किर सम्मुहम्मि, कुणेइ तेसिं अहिवायणं सो ।।१०।।

---

१. उपजाति छंद । २. पुष्यनंदी । ३. इ-जे-राः पादपूरणे—प्रा. व्या. ८।२।२१७ । ४. मम । ५. यूयम् । ६. कथयामि (कथेर्वज्जर····प्रा. व्या..... ८।४।२) । ७. कांक्षति (कांक्षे····प्रा. व्या. ८।४।१९२) ।

द्वितीय सर्ग

१. मनुष्य का यह स्वभाव है कि वह सुन्दर वस्तु को देखकर उसमें मुग्ध हो जाता है और उसे प्राप्त करने का प्रयत्न करता है।

२. दत्त गाथापति की पुत्री को देखकर राजा ने अपने मन में विचार किया कि यह मेरे राजकुमार के लिए सर्वथा योग्य है।

३. यदि इसका राजकुमार पुष्यनंदी के साथ विवाह हो जाए तो मेरा कुल भी धन्य होगा और राजकुमार भी।

४. मेरे नगर में अनेक कन्याएं हैं पर इसके समान कोई नहीं है। अतः मैं इसे कुमार हेतु प्राप्त करने की शीघ्र ही चेष्टा करूंगा।

५-६. मन में इस प्रकार विचार कर राजा ने अन्तरंग पुरुषों को बुलाकर कहा—तुम लोग मेरे आदेश से नगर के प्रतिष्ठित दत्त गाथापति के घर जाओ और मेरे कथनानुसार उसको कहो—

७. राजा तुम्हारी सुन्दर, धीर, सुशील और कार्य-दक्ष पुत्री देवदत्ता को अपने पुत्र के लिए चाहते हैं।

८. यदि तुम्हारी इच्छा हो तो राजकुमार पुष्यनंदी के साथ उसका शीघ्र ही विवाह कर दो। इसमें मेरा कोई भी बलप्रयोग नहीं है।

९. राजा की इस प्रकार आज्ञा प्राप्त करके वे चतुर व्यक्ति दत्त गाथापति के घर गये। क्योंकि भृत्य-जन आज्ञा पालक होते हैं।

१०. उनको अपने घर में आए हुए देखकर दत्त गाथापति तत्काल उनके सम्मुख गया और उनका अभिवादन किया।

आणेइ ता झत्ति सयम्मि गेहे, कुणेइ तेसिं इर सक्कइं य ।
पुच्छेइ पच्छा य कहं भवंता, समागया भो! णिलयम्मि मज्झ ।।११।।

का अत्थि सेव्वा य महं य जुग्गा, जओ भवंता अहुणात्थ आआ[8] ।
वा को वि अण्णो किर अत्थि हेऊ, फुडं कहेज्जा य ममं भवंता ।।१२।।

सोऊण दत्तस्स इमं य वाणिं, लवेंति ते आगमणस्स बीअं ।
भूवेण अम्हे इह पेसिआ य, इमं इयाणिं कहिऊण वायं ।।१३।।

वांछेइ भूवो कुणिउं विवाहं, णिअस्स पुत्तस्स य सत्तरं ते ।
'देवाइदत्त' त्ति सुआअ सद्धिं, मणोरमा अत्थि य जा सुसीला ।।१४।।

तुब्भं हुवेज्जा हिअयस्स कंखा, तयाणि पूरेज्ज णिवस्स वांछं ।
देक्खेइ तायो सययं सुआए, हिअं य चिंतं य कुणेइ ताए ।।१५।।
(तीहिं विसेसगं)

तेसिं सुणेऊण इमं य वत्तं, हुवेइ दत्तो पमुओ मणम्मि ।
इत्थं य साहेइ तयाणि ता य, महं सुआ पुण्णवई हु अत्थि ।।१६।।

जं मग्गणं ताअ कुणेइ भूवो, णिअस्स पुत्तस्स कये इयाणिं ।
अण्णो वरो को य हुवेइ णेण, वरो य मज्झं तणुआअ लोगे ।।१७।।
(जुग्गं)

कण्णं णिअं तत्थ पिआ य दाउं, महेइ[9] सा जत्थ लहेज्ज सायं ।
पुत्ती जया होइ य पीलिआ य, वच्चेइ दुक्खं पउरं य तायो ।।१८।।

तायस्स कायव्वमिमं य लोगे, सुअं णिअं देज्ज वरम्मि ठाणे ।
सायं सया जेण गमेज्ज जीअे, दुहं ण वच्चेज्ज कयाइ किंचि ।।१९।।

पूसाइणंदी जुवरायरूवो, मणोहरो संतसहावधारी ।
धीरो कुलीणो खु जणप्पिओ य, वये सरिच्छो य सुयेण जुत्तो ।।२०।।

सो सव्वओ मज्झ सुआअ जुग्गो, ण संसओ अत्थ मणम्मि किंचि ।
वारिज्जयं[10] तेण समं कणीए, समुज्जओ हं सहसत्ति काउं ।।२१।।

---

८. आगताः । ९. कांक्षति । १०. विवाहम् (वारिज्जयं विवाहो—पाइय-लच्छीनाममाला-४०४) ।

११. उन्हें अपने घर में लाकर उसने उनका सत्कार किया और पूछा—आप लोग मेरे घर कैसे पधारे ?

१२. मेरे योग्य क्या सेवा है ? जिससे आप लोग यहां आए हैं। या अन्य कोई कारण है मुझे स्पष्ट कहें।

१३-१४-१५. दत्त गाथापति की यह बात सुनकर उन्होंने अपने आगमन का कारण बताते हुए कहा—राजा ने हमें यहां यह कहकर भेजा है कि वे अपने पुत्र का विवाह तुम्हारी सुन्दर और सुशील पुत्री देवदत्ता के साथ करना चाहते हैं। यदि तुम्हारी हार्दिक इच्छा हो तो राजा की आकांक्षा को पूर्ण करो। क्योंकि पिता अपनी पुत्री का सदा हित देखता है और उसकी चिंता करता है।

१६-१७. उनकी यह बात सुनकर दत्त गाथापति मन में प्रसन्न हुआ। उसने उनको कहा—मेरी पुत्री निश्चित ही पुण्यवती है जो कि राजा ने अपने पुत्र के लिए उसकी मांग की है। उससे (राजकुमार से) अच्छा वर मेरी कन्या के लिए और कौन हो सकता है ?

१८. पिता अपनी पुत्री को वहीं देना चाहता है जहां वह सुख पाए। यदि कन्या दुःखी होती है तो पिता को भी दुःख होता है।

१९. पिता का प्रमुख कर्त्तव्य है कि वह अपनी पुत्री को अच्छे स्थान में दे। जिससे वह सदा जीवन में सुखी रहे। कभी दुःखी न बने।

२०. राजकुमार पुष्यनंदी युवराजरूप है। वह सुन्दर, शांत-स्वभावी, धीर, कुलीन, जनप्रिय, ज्ञानयुक्त और वय में मेरी पुत्री के समान है।

२१. वह सब प्रकार से मेरी पुत्री के योग्य है, इसमें मुझे कुछ भी संशय नहीं है। अतः मैं उसके साथ शीघ्र ही अपनी कन्या का विवाह करने के लिए उद्यत हूं।

वण्णेमि किं भूवइणो मुहेण, कयण्णुयं[11] संपइ हं य किंचि ।
पुत्तिं इयाणिं मह मग्गिऊण, गुरू कयो तेण अहं य णूणं ।।२२।।

भूवस्स होज्जाहिइ पुत्तभज्जा, महं कुमारित्ति मणम्मि मोओ ।
दत्तस्स सोऊण इमं सुवाणिं, हियेे पमोअं पउरं गया ते ।।२३।।

संबंधगं ताण य णिच्छिऊण, तिहिं विवाहस्स य णिण्णिऊण ।
आणंदचित्ता हुविऊण पच्छा, णिवस्स पासम्मि समागया ते ।।२४।।
(जुग्गं)

जंपेंति भूवं णमिऊण ते य, समं विवाहस्स तयाणि वत्तं ।
राया सुणेऊण लहेइ मोअं, धणं य दच्चा सलहं करेइ ।।२५।।

दत्तस्स पुत्तीअ हुवीअ दाणिं, णिवस्स पुत्तेण समं य लग्गो ।
इत्थं सुणेत्ता पउरा कुणेंति, सुआअ भग्गस्स पसंसणं य ।।२६।।

इइ बीओ सग्गो समत्तो

---

११. कृतज्ञताम् ।

२२. राजा की मैं मुख से क्या कृतज्ञता प्रकट करूं ? उन्होंने मेरी पुत्री की मांग करके मुझे निश्चित ही भारी बना दिया।

२३-२४. मेरी पुत्री राजा की पुत्रवधू बनेगी—इसकी मेरे मन में प्रसन्नता है। दत्त गाथापति की यह बात सुनकर वे सब प्रसन्न हुए। उन्होंने उनका सम्बन्ध निश्चित कर विवाह तिथि निर्णीत कर दी और प्रसन्नतापूर्वक राजा के पास आए।

२५. उन्होंने राजा को नमस्कार कर विवाह संबंधित सब बातें कही। सुनकर राजा बहुत प्रसन्न हुआ। उसने उन लोगों को धन देकर उनकी प्रशंसा की।

२६. दत्त गाथापति की पुत्री का संबंध राजा के पुत्र से हुआ है—यह सुनकर नगरवासी कन्या के भाग्य की प्रशंसा करने लगे।

द्वितीय सर्ग समाप्त

तइओ सग्गो

जगम्मि[1] मण्णेंति णरा विवाहं, कयं सया मंगलिअं य एगं ।
इमम्मि कालम्मि हुवेंति बद्धा, दुवे य पक्खा य परोपरम्मि ।।१।।

कणीण जीअे समयम्मि अस्सि, हुवेइ चित्तं परिवट्टणं य ।
पराण गेहे किर सा पयाइ, घरं चइत्ता पिउणो णिअस्स ।।२।।

लहेइ णव्वा मणुआ तहिं सा, लहेइ वायावरणं णवीणं ।
इमा ठिई ताअ कये हुवेइ, सइं हु पीला-जणणी तयाणि ।।३।।

परं खु पच्छा समयस्स किंचि, ठिई ण चिट्ठेइ य सा य तत्थ ।
रमेइ वायावरणम्मि तम्मि, असंथुओ को अण होइ ताए ।।४।।

विवाहकालो य जया समीवे, समागओ दत्तसुआअ ताअ ।
कुणेइ दत्तो पउरं य सज्जं, जगम्मि कज्जं गुरुअं विवाहो ।।५।।

इमम्मि काले कढिणं य किच्चं, कणीण पाणिग्गहणं य अत्थि ।
पहा[2] सुदायस्स[3] गया पवुड्ढि, समागयं जाअ फलं य कुच्छियं ।।६।।

महेइ को णो जणयो य दाउं, णिअं कुमारिं य बलाणुरूवं ।
परं धणं णेंति य मग्गिऊण, कणीण तायेण णरा इयाणि ।।७।।

इमा पहा जाव ण होइ णट्ठा, कणी हुविस्सेइ य ताव भारो ।
अओ विणासेज्ज इमं य दुत्ति, अयं विआरो सयलाणमत्थि ।।८।।

दिणे विवाहस्स सुणिच्छियम्मि, समागये झत्ति कुणेइ दत्तो ।
णिअं य कण्णं य विहूसियं य, दुयं य ठावेइ य वाहणे तं ।।९।।

अणेगमच्चेहि समं गमेइ, कणिं य घेत्तूण णिवस्स पासे ।
पदेइ भूवं इर वंदिऊण, णिअं कुमारिं चिरपोसियं सो ।।१०।।

---

१. उपेन्द्रवज्रा छंद । २. प्रथा । ३. दहेजस्य (यौतकं युतयोर्देयं सुदायो हरणं च तत्—अभिधानचिन्तामणि ३।१८४) ।

तृतीय सर्ग

१. संसार में विवाह एक मांगलिक कार्य माना गया है। इस समय दो पक्ष परस्पर में संबद्ध होते हैं।

२. कन्या के जीवन में इस समय अपूर्व परिवर्तन होता है। वह अपने पिता के घर को छोड़कर दूसरों के घर में जाती है।

३. वहां उसे नये व्यक्ति और नया वातावरण मिलता है। यह स्थिति उसके लिए एक बार दुःखद होती है।

४. किन्तु कुछ समय के बाद वह दुःखद स्थिति समाप्त हो जाती है। वह वहां के वातावरण में रम जाती है। फिर उसके लिए वहां कोई अपरिचित नहीं रहता।

५. जब उस देवदत्ता का विवाह नजदीक आने लगा तब दत्त गाथापति प्रचुर तैयारी करने लगा। क्योंकि संसार में विवाह बोझिल कार्य है।

६. इस समय तो कन्या का विवाह और भी अधिक कठिन कार्य है, क्योंकि दहेज प्रथा बढ़ गई है। इसके कुपरिणाम भी आ गये हैं।

७. कौन पिता अपनी शक्ति के अनुसार अपनी कन्या को देना नहीं चाहता? परन्तु इस समय मनुष्य कन्या के पिता से धन मांग कर लेते हैं।

८ यह प्रथा जब तक नष्ट नहीं होगी तब तक कन्या भारभूत ही होगी। अतः यह प्रथा शीघ्र ही नष्ट हो, ऐसा सबका विचार है।

९-१०. विवाह के निश्चित दिन दत्त गाथापति ने कन्या को अच्छे वस्त्र और आभूषणों से विभूषित किया। फिर उसे वाहन में बिठा कर अनेक लोगों के साथ राजमहल में गया और राजा को प्रणाम कर अपनी चिरपोषित कन्या अर्पित की।

कुणेइ भूवो य समागयाण, समेसि मच्चाण सुसागयं य ।
सुहे मुहुत्ते हरिसेण सद्धिं, कुणेइ पाणिग्गहणं य तेसिं ।।११।।

धणं य दत्तो पउरं य देइ, णिआअ कण्णाअ तराणुरूवं[४] ।
गिहे समायाइ सयम्मि पच्छा, इमं य सिक्खं सकणीअ देंतो ।।१२।।

सुआ ! वसेज्जा ससुहं य अत्थ, मणेज्ज आणं ससुराण णिच्चं ।
सया पवड्ढेज्ज जसं कुलस्स, कुलंगणे मित्तसमा[५] भिसेज्जा[६] ।।१३।।

पयाणकालम्मि तओ समेसिं, हुवीअ चित्तं किर गग्गरं य ।
णेहेण गेहम्मि सुपोसिआ जा, पयाइ सा अण्णघरम्मि अज्ज ।।१४।।

विही विचित्ता इमिआ जगस्स, हुवेइ कण्णा परमंदिरस्स ।
परस्स वंसम्मि कुणेइ वुड्ढिं, अओ हु सा अत्थि य पारकेरा[७] ।।१५।।

जणिं सुसीलं लहिऊण होही, तया पसण्णो कुमरो मणम्मि ।
कुणेइ चित्तम्मि सुकप्पणा सो, णिअस्स जीअस्स कये वहुत्ता[८] ।।१६।।

वसेइ ताए य समं य सायं, जवेइ[९] कालं णिअगं समोअं ।
करेइ सेव्वं पिअराण णिच्चं, सयं य कायव्वमिहं कुणेंतो ।।१७।।

इइ तइओ सग्गो समत्तो

---

४. बलानुरूपम् । ५. सूर्यसमा । ६. भासेत । ७. परकीया । ८. प्रभूता (प्रभूते वः—प्रा. व्या. ८।१।२३३) । ९. यापयति (यापे र्जवः—प्रा. व्या. ८।४।४०) ।

११. राजा ने आये हुए सभी व्यक्तियों का स्वागत किया और शुभ मुहूर्त्त में उनका (राजकुमार पुष्यनंदी और देवदत्ता का) विवाह कर दिया।

१२. दत्त गाथापति ने अपने सामर्थ्यानुसार कन्या को प्रचुर धन दिया। तत्पश्चात् वह कन्या को इस प्रकार शिक्षा देता हुआ अपने घर आ गया—

१३. पुत्रि! तुम यहां सुखपूर्वक रहना। सास, ससुर की आज्ञा का पालन करना। कुल के यश को बढ़ाना और कुलरूपी आंगन में सूर्य-समान चमकना।

१४. वहां से प्रस्थान करते समय सबका मन गद्‌गद् हो गया। जो कन्या घर में स्नेह से पाली गई थी वही आज दूसरे के घर में चली गई।

१५. संसार का यह निश्चित नियम है कि कन्या दूसरे के घर की होती है। वह दूसरे के वंश में वृद्धि करती है। अतः वह पराई होती है।

१६. सुशील पत्नी को पाकर राजकुमार मन में बहुत प्रसन्न हुआ। वह अपने जीवन के लिए अच्छी कल्पनाएं करने लगा।

१७. वह उसके साथ सुखपूर्वक रहता हुआ अपने समय को प्रसन्नतापूर्वक व्यतीत करने लगा। वह अपने कर्तव्य का पालन करता हुआ माता-पिता की सेवा करने लगा।

तृतीय सर्ग समाप्त

चउत्थो सग्गो

गेण्हेंति[1] जम्मं मणुआ इहं जे, मच्चुं य णूणं य लहेंति ते य।
होज्जा णिवो तित्थयरो य को वा, णाइं य कालो य जहाइ कं य ॥१॥

मच्चू कया कुत्थ य अब्भिडेज्जा[2], णो को वि मच्चो य मुणेइ किंचि।
दत्तावहाणो य अओ हुवेज्जा, जीअम्मि णिच्चं मणुआ य अत्थ ॥२॥

वम्फेइ सायं हु पयाण जो य, कुव्वेइ किच्चं हिअयं य ताणं।
वच्चेइ मिच्चुं[3] सहसा य सो हा!, धम्मी णिवो वेसमणाइदत्तो ॥३॥

दट्ठूण रायं णिहणं य पत्तं, सोगो पयायो समरायवंसे।
साहेमि वत्तं कुमरस्स किं य, राणीअ दुक्खस्स तहिं विचित्तं ॥४॥

कुव्वेंति दुक्खं पउरं तयाणिं, अप्पं य धीरं चइऊण ते य।
कालस्स अग्गं य परं य किंचि, कस्सावि णाइं य बलं चलेइ ॥५॥

मच्चुं जया को वि गमेइ मच्चो, कुव्वेंति दुक्खं पउरं तया ते।
जेसिं सणेहो इर तेण सद्धिं, णेहं विणा को ण दुहं कुणेइ ॥६॥

राया इयाणिं पगओ य मच्चुं, विज्जुव्व वत्ता इमिआ पुरीए।
सव्वत्थ सिग्घं पसरं पयाया, सोऊण चित्तं सयला गया य ॥७॥

कुव्वेंति दुक्खं पउरा[4] मणुस्सा, तेसिं गुणा विम्हरिऊण[5] चित्ते।
सो आसि णायी हिअपेक्खगो य, रज्जम्मि णेसिं सुहिआ पया य ॥८॥

मच्चुस्स पच्छा वि सरेंति तं भो!, मच्चा णिअंतं भुवणम्मि अत्थ।
कुव्वेइ अण्णाण हिआय किं वि, किच्चं सुकंतं जहिऊण सत्थं ॥९॥

---

१. छंद-इंद्रवज्रा, लक्षण—स्यादिन्द्रवज्रा यदि तौ जगौ गः। २. समागच्छेत् (समा अब्भिडः—८।४।१६४)। ३. मृत्युं (मसृण-मृगाङ्क-मृत्यु शृङ्ग-धृष्टे वा—प्रा. व्या. ८।१।१३० इति सूत्रेण मिच्चु, मच्चु द्वौ भवतः)। ४. पौराः (अउः पौरादौ च प्रा. व्या. ८।१।१६२)। ५. स्मृत्वा—(स्मरेर्झर-झूर……सुमर-पयर-पम्हुहाः—प्रा. व्या. ८।४।७४)।

चतुर्थ सर्ग

१. जो मनुष्य यहां जन्म ग्रहण करते हैं वे निश्चित ही मृत्यु को प्राप्त करते हैं। फिर वे चाहे राजा हो, तीर्थंकर हो या और कोई। मृत्यु किसी को नहीं छोड़ती।

२. मृत्यु कब और कहां आ जाये—यह कोई भी व्यक्ति नहीं जानता है। अतः मनुष्यों को जीवन में सदा सावधान रहना चाहिए।

३. जो वैश्रमणदत्त राजा प्रजा का सुख चाहता था, उसके लिए हितकारी कार्य करता था वह भी अचानक मृत्यु को प्राप्त हो गया।

४. राजा को मरे हुए देखकर संपूर्ण राजवंश में शोक छा गया। राजकुमार और रानी के दुःख का तो कहना ही क्या ?

५. वे धैर्यहीन होकर प्रचुर दुःख करने लगे। पर मृत्यु के आगे किसी का कुछ भी बल नहीं चला।

६. जब कोई व्यक्ति मरता है तब उसका वे ही व्यक्ति अधिक दुःख करते हैं जिनका उनके साथ स्नेह है। स्नेह के बिना कोई दुःख नहीं करता।

७. राजा की मृत्यु हो गई है—यह बात सर्वत्र नगर में विद्युत् की तरह फैल गई। सुनकर सभी विस्मित हो गये।

८. पुरवासी उसके गुणों का स्मरण करके मन में दुःख करने लगे। क्योंकि वह न्यायी और हितदर्शी था। प्रजा उसके राज्य में सुखी थी।

९. मृत्यु के बाद मनुष्य उसी व्यक्ति को याद करते हैं जो अपने स्वार्थ को छोड़कर दूसरों के हित के लिए अच्छा कार्य करता है।

जत्ताअ तेसिं चरमाअ मच्चा, आगम्म दंसेंति हिअस्स दुक्खं ।
कुव्वेंति चित्तम्मि सुभावणाओ, अम्हाण भूवो सुगइं लहेज्जा ।।१०।।

काऊण कज्जं सयलं मणुस्सा, आयांति गेहे णिअगे तयाणिं ।
पूसाइणंदी णिवमंदिरम्मि, दुक्खाउलो हंदि समागओ य ।।११।।

मच्चुस्स पच्छा जणयस्स सो य, रज्जस्स सामी तयाणि जाओ ।
सो आसि पुव्वं जुवरायरूवो, हूओ अओ तत्थ णिवो य झत्ति ।।१२

होऊण राया वि ण पम्हुसेइ, कायव्वमप्पं किर पूसणंदी ।
कुव्वेइ माआअ सया सुसेव्वं, णाइं तुडिं किंचि कुणेइ तत्थ ।।१३।।

भत्तुस्स पच्छा विलयाण होइ, पुत्तो सया अत्थ सुरक्खगो य ।
सो अप्पमत्तेण कुणेइ णिच्चं, अंबाअ सेवं य अओ तयाणिं ।।१४।।
वंदेइ णिच्चं णिअगं सवित्तिं, अब्भंगणाइं इर कारवेइ ।
ण्हावेइ णीरेण सुगंधिणा तं, कारेइ हत्थेण सुभोअणं य ।।१५।।

कुव्वेइ पच्छा जणणीअ भत्तो, कज्जं य पुण्णं णिअगं समत्थं ।
इत्थं स-कालं सययं जवेइ, आणंदचित्तो हुविऊण लोगे ।।१६।।

दट्ठूण इत्थं णिअगं य सामिं, अत्ताअ सेवाअ रयं तयाणिं ।
चिंतेइ णं सा हिअयम्मि झत्ति, देवाइदत्ता इर भारिआ य ।।१७।।
पूसाइणंदी य महं विवोढा, अंबाअ सेवाअ रयो त्थि णिच्चं ।
णाइं य कालं य अओ लहेमि, भोगा य भोत्तुं इर तेण सद्धिं ।।१८।।

पच्चूहरूवा इमिआ ममट्ठं, दूरं कुणेज्जा तुरिअं अओ तं ।
भोगा य भोत्तुं पइणा य सद्धिं, कालं लहिस्सं पउरं जओ हं ।।१९।।

इत्थं स-चित्तम्मि विआरिऊण, सा जोअणं तं य कुणेइ हंतुं ।
कज्जं ण किं किं अहमं कुणेइ, कामाउरो हा! हुविऊण मच्चो ।।२०।।

कामो! तुमं धिक्करणं य णूणं, वत्ता विचित्ता तु[६] वसंगयाणं ।
रूवं णिअं वीसरिऊण दुत्ति, ते होंति मच्चा कुकये पउत्ता ।।२१।।

---

६. तव ।

१०. उसकी शवयात्रा में अनेक व्यक्तियों ने आकर अपना हार्दिक दुःख प्रकट किया और राजा के सद्गति की मंगल कामना की।

११. समस्त कार्य करके मनुष्य अपने-अपने घर चले गये। राजकुमार पुष्यनंदी दुःखी मन से अपने महल में आया।

१२. पिता की मृत्यु के बाद वह राज्य का स्वामी हुआ क्योंकि वह पहले ही युवराज बन गया था। अतः राजा बना।

१३. राजा होने पर भी पुष्यनंदी अपने कर्त्तव्य को नहीं भूला। वह सदा अपनी माता की सेवा करता और उसमें किंचित् भी स्खलना नहीं होने देता।

१४. पति की मृत्यु के बाद पुत्र ही स्त्रियों का रक्षक होता है, अतः वह जागरूकतापूर्वक माता की सेवा करने लगा।

१५. वह प्रतिदिन अपनी माता को नमस्कार करता। अभ्यंगन (तेल मालिश) आदि कराकर उसको सुगंधित जल से स्नान कराता और अपने हाथ से उसे स्वादु भोजन करवाता।

१६. उसके बाद वह मातृभक्त अपना समस्त कार्य करता था। इस प्रकार प्रसन्नचित्त होकर वह अपना समय बिताने लगा।

१७. अपने पति को इस प्रकार सास की सेवा में रत देखकर वह देवदत्ता मन में विचार करने लगी —

१८. मेरा पति पुष्यनंदी सदा मातृसेवा में रत रहता है। अतः मुझे उसके साथ कामभोगादि भोगने के लिए समय नहीं मिल पाता।

१९. यह मेरे लिए विघ्नरूप है। अतः मुझे इसे शीघ्र ही दूर करना चाहिए। जिससे मुझे पति के साथ कामभोग भोगने के लिए प्रचुर समय मिल जायेगा।

२०. इस प्रकार मन में विचार कर उसने उसको मारने की योजना बनाई। कामातुर होकर व्यक्ति क्या-क्या अधम कार्य नहीं करता ?

२१. हे काम ! तुमको निश्चित ही धिक्कार है। तुम्हारे वशीभूत व्यक्तियों की बात विचित्र है। वे अपने स्वरूप को भूलकर कुकर्म में प्रवृत्त हो जाते हैं।

सा देवदत्ता वि वसंगया से, हंतुं वियारेइ णिअं य सासुं ।
दत्तावहाणा हुविऊण णिच्चं, पेच्छेइ वेलं हणिउं य तं य ।।२२।।

ण्हाऊण सुत्ता विअणम्मि अंबा, पूसाइणंदीअ य एगया य ।
ढुण्ढुल्लमाणा सहसा य तत्थ, सा देवदत्ता य समागमेइ ।।२३।।

दट्ठूण सुत्तं णिअगं य सासुं, एगंतठाणम्मि य सा तयाणि ।
अण्णं जणं तत्थ ण दट्ठुआण, इत्थं विचिंतेइ णिअम्मि चित्ते ।।२४।।

कालो अयं संपइ अत्थि सेट्ठो, एअं विहंतुं सुहबाहगं मे ।
इत्थं विआरं करिऊण चित्ते, सा भत्तगेहे तुरिअं गमेइ ।।२५।।

णेऊण एगं घणदंडगं य, तवेइ तं झत्ति हुआसणम्मि ।
केसूस्स पुप्फस्स व तं तयाणिं, काऊण रत्तं इर देवदत्ता ।।२६।।

संडासएणं गहिऊण तं य, अत्ता सुसुत्ता जह[७] अब्भिडेइ ।
तं लोहदंडं तुरिअं य ताए, गुज्झम्मि ठाणम्मि य पक्खिवेइ ।।२७।।
(जुग्गं)

केणावि इत्थं हु विचिंतियं किं, एआरिसी अत्थि य देवदत्ता ।
सासूअ सेव्वा सइ जाअ कज्जं, कामंधला सा विहणेइ तं य ।।२८।।

हा! काम! लोगम्मि तुमं धि अत्थि, जो तुं इयाणिं सदयं वि तं य ।
काऊण कूरं य विवेगभट्ठं, कज्जं करावेइ अकप्पियं य ।।२९।।

गुज्झम्मि ठाणम्मि य पक्खिवेण, ताए मुहा णिस्सरिओ य सद्दो ।
सोऊण तं तत्थ पलायमाणी,[८] सिग्घं य दासीउ समागया य ।।३०।।

तहिं तया तत्थ णिहालिआ सा, देवाइदत्ता इर वच्चमाणा ।
अम्मो इमा कुत्थ गमेइ इण्हिं, णं कंदमाणं चइऊण सासुं ।।३१।।

इत्थं कुणंती[९] हिअये वियारं, ता रायमाआअ गया समीवं ।
दट्ठूण मच्चुं पगयं तया तं, दुक्खं य ताणं पउरं पयायं ।।३२।।
(जुग्गं)

---

७. यत्र (त्रपो-हि-ह-त्थाः—प्रा. व्या. ८।२।१६१) । ८. पलायमानाः ।
९. कुर्वत्यः ।

२२. वह देवदत्ता उसके (काम के) वशीभूत होकर अपनी सास को मारने का विचार करने लगी। वह सावधान होकर उसको मारने का अवसर देखने लगी।

२३. एक बार राजा पुष्यनंदी की माता स्नान कर एकांत में सोई हुई थी। वह देवदत्ता घूमती हुई अचानक वहां आ गई।

२४. अपनी सास को एकांत में सोई हुई देखकर तथा अन्य किसी को वहां न देखकर उसने अपने मन में इस प्रकार विचार किया—

२५. मेरे सुख में बाधक इसको मारने का यह अच्छा समय है। इस प्रकार विचार कर वह शीघ्र ही रसोई घर में गई।

२६-२७. उसने एक लोहदंड को लेकर अग्नि में तपाया। उसको केसू के पुष्प की तरह लाल करके संडासी से पकड़कर जहां सास सोई हुई थी वहां आई और उस लोहदंड को उसके (सास के) गुह्य स्थान में घुसेड़ दिया।

२८. क्या किसी ने सोचा था कि देवदत्ता इस प्रकार की है? सदा सास की सेवा करना ही जिसका कर्त्तव्य था वह कामांध उसको मार देगी।

२९. हे काम! तुमको धिक्कार है। जो तुमने उस दयालु देवदत्ता को क्रूर और विवेकभ्रष्ट बना दिया और उससे अचिंतित कार्य करा लिया।

३०. गुह्य स्थान में (लोहदंड के) घुसड़ने से उसके (राजमाता) मुंह से चीख निकली। उसको सुनकर दासियां शीघ्र ही दौड़ती हुई वहां आई।

३१-३२. तब उन्होंने जाती हुई देवदत्ता को देखा। यह क्रन्दन करती हुई सास को छोड़कर कैसे जा रही है—इस प्रकार मन में विचार करती हुई वे राजमाता के पास आई। उसको मृत देखकर उन्हें बहुत दुःख हुआ।

णो तत्थ अण्णं य णिहालिऊण, णं देवदत्ता हु इमा हणीअ ।
चित्तम्मि इत्थं किर णिण्णिऊण, पूसाइणंदीअ णिवस्स पासं ।।३३।।

आगम्म इत्थं पिसुणेंति भूवं, सामी ! हु जायं अहुणा अणत्थं ।
तुज्झ य माया विहया इयाणिं, राणीअ तुम्हं इर संपयं य ।।३४।।
(जुग्गं)

सोऊण दासीवयणेण[10] इत्थं, पूसाइणंदी णिवई तयाणिं ।
चित्तम्मि दुक्खं पउरं लहेंतो, मुच्छं य लद्धूण पडेइ हेट्ठं ।।३५।।

दट्ठूण भूवस्स इमं ठिइं ता, मुच्छं दविट्ठं कुणिउं पयत्तं ।
कुव्वेंति सिग्घं पउरं तयाणिं, आहाररूवो[11] णिवई य ताणं ।।३६।।

मुच्छाअ णट्ठे तुरिअं पयावो, आयाइ माऊअ तया समीवं ।
दट्ठूण ताए मयविग्गहं सो, झंखेइ[12] चित्ते पउरं तयाणिं ।।३७।।

रायस्स माया पगया य कालं, सोऊण वत्तं य परोप्परेण ।
आयांति जत्ताअ सवस्स ताए, लोगा अणेगे पउरा[13] य खिप्पं ।।३८।।

आडंबरेणं य कुणीअ ताए, पूसाइणंदी चरमं य कज्जं ।
सव्वेहि कज्जेहि णिवट्टिऊण, आयाइ पच्छा णिवमंदिरम्मि ।।३९।।

चिंतेइ इत्थं णिअगम्मि चित्ते, कोवं गओ सो सयराहमेव ।
देवाइदत्ता अण अत्थि णारी, कीणासणी अत्थि मणुस्सरूवे ।।४०।।

ताए कडं संपइ तं य कज्जं, सामण्णणारी कुणिउं ण सक्का ।
डंडं अओ देज्ज इमाअ इत्थं, मच्चुं गमेज्जा तुरिअं जओ सा ।।४१।।

चित्तम्मि इत्थं य विआरिऊण, देवाइदत्तं य णिमंतिऊण ।
साहेइ कूरा सि तुमं य दुट्ठा, मज्झं कुलं हंद कलंकिअं य ।।४२।।
कायव्वमेअं भुवणे वहूणं, सेवेज्ज सासुं णिअगं मणेण ।
सेवाअ वत्ता य परं दविट्ठा, तं हंदि दाणिं य तुमं हणीअ ।।४३।।

ठाउं ण जुग्गा णिवमंदिरे मे, णाइं य जुग्गा इह जीविउं तुं ।
डंडं अओ देमि तुमाइ[14] इत्थं, सिक्खं लहिस्संति पया विजेण ।।४४।।

---

१०. दासीवदनेन । ११. आधाररूपः । १२. विलपति (विलपेर्झंख-वडवडौ—प्रा. व्या. ८।४।१४८) । १३. पौराः । १४. तव ।

३३-३४. अन्य व्यक्ति को वहां न देखकर इसको (राजमाता को) देवदत्ता ने ही मारा है, इस प्रकार मन में निश्चय करके वे राजा पुष्यनंदी के पास आई और बोली—स्वामिन् ! अनर्थ हो गया। आपकी माता को रानी (देवदत्ता) ने अभी मार डाला।

३५ दासियों के मुख से इस प्रकार सुनकर राजा पुष्यनंदी मन में प्रचुर दुःख पाता हुआ मूर्च्छित होकर नीचे गिर पड़ा।

३६. राजा की यह स्थिति देखकर वे (दासियां) मूर्च्छा को दूर करने का प्रयत्न करने लगीं। क्योंकि राजा उनका आधाररूप था।

३७. बेहोशी दूर होने पर राजा शीघ्र माता के पास आया। उसके मृत शरीर को देखकर वह बहुत विलाप करने लगा।

३८. राजमाता की मृत्यु हो गई है—यह बात एक दूसरे से सुनकर नगर के अनेक लोग उसकी शवयात्रा में आये।

३९. राजा पुष्यनंदी ने उसका अन्तिम कार्य (संस्कार) बड़े आडम्बर से किया। फिर सब कार्यों से निवृत्त होकर वह राजमहल आया।

४०. क्रुद्ध हुए उसने अपने मन में इस प्रकार सोचा—देवदत्ता स्त्री नहीं है। वह मनुष्यरूप में राक्षसिनी है।

४१. उसने अभी वह कार्य किया है जिसको सामान्य स्त्री नहीं कर सकती। अतः इसको इस प्रकार का दंड देना चाहिए जिससे वह शीघ्र ही मर जाये।

४२. मन में इस प्रकार का विचार कर उसने देवदत्ता को बुलाया और कहा—तुम क्रूर हो, दुष्ट हो। तुमने मेरे कुल को कलंकित किया है।

४३. संसार में बहू का कर्तव्य होता है कि वह सदा सास की मन से सेवा करे। किंतु दुःख है, तुमने सेवा करना तो दूर, उसको मार डाला।

४४. तुम न मेरे महल में रहने योग्य हो और न इस संसार में जीवित रहने के योग्य। अतः मैं तुमको इस प्रकार का दंड दूंगा जिससे जनता भी शिक्षा ग्रहण करेगी।

वोत्तूण इत्थं स-णरा य सिग्घं, आमंतिऊणं पिसुणेइ सो य ।
दुट्ठं इमं रायपहम्मि णेज्जा, साहेज्ज मच्चाण य सम्मुहम्मि ।।४५।।

पूसाइणंदिस्स हया सवित्ती, दुट्ठाअ राणीअ इमाअ इण्हि ।
डंडो इमाए य णिवेण दिण्णो, कोवं गयेणं पउरं तयाणि ।।४६।।

णासं सवं[15] णाअ विच्छिदिऊण, णं बंधिऊणं अवओडगेणं[16] ।
मंसं इमाए इर भिंदिऊण, भुञ्जाविऊणं य इमं तयाणि ।।४७।।

दाऊण सूलीअ इमाअ डंडं, मारेज्ज एअं सयराहमेव ।
पावी य दंडेज्ज जगम्मि णिच्चं, कायव्वमेअं पुढमं णिवस्स ।।४८।।
(जुग्गं)

भूवस्स णं ते लहिऊण आणं, राणिं य णेऊण चउप्पहम्मि ।
आगम्म भूवस्स वयाणुरूवं, साहेंति इत्थं मणुयाण मज्झे ।।४९।।

देवाइदत्ता इमिआ य राणी, रायस्स माऊअ य घाइआ त्थि ।
कोवं गयेणं य णिवेण दिण्णो, डंडो इमाए अहुणा इमो य ।।५०।।

वोत्तूण इत्थं जणसम्मुहम्मि, लूरेंति[17] ताए सवणे य णासं ।
बंधेंति तं ते अवओडगेण, भिंदेंति ताए पललं तयाणि ।।५१।।

तं भुंजिउं देंति णिअं य मंसं, इत्थं य डंडं तुरिअं य देंति ।
मच्चो जहा अत्थ कुणेइ कम्मं, णूणं फलं सो य तहा लहेइ ।।५२।।
(जुग्गं)

दट्ठूण ताए य इमं ठिइं य, दट्ठूण पावस्स फलाइ सक्खं ।
दट्ठूण[18] वेवंति य माणसाइं, पावम्मि तेसिं य भयं य जायं ।।५३।।

तेसुं दिणेसुं जगवच्छलो य, मच्चाण सच्चं पहदंसगो य ।
ताणं य दाया भवपीलियाणं, णाहो अणाहाण जणाण णिच्चं ।।५४।।

---

१५. कर्णम् । १६. अवकोटकबंधन-रस्सी से गले और हाथ को मोड़कर पृष्ठ भाग के साथ बांधना अवकोटक बंधन कहलाता है । १७. छिन्दन्ति—(छिदेर्दुहाव·······लूराः—प्रा. व्या. ८।४।१२४) । १८. दष्टृणाम् ।

४५. इस प्रकार कहकर उसने शीघ्र ही राजपुरुषों को बुलाया और कहा— इस दुष्टा को चौराहे पर ले जाओ और मनुष्यों के सामने कहो—

४६. इस दुष्ट रानी ने राजा पुष्यनंदी की माता को मार डाला है । अतः राजा ने कुपित होकर इसे इस प्रकार का दंड दिया है ।

४७-४८. इसके नाक, कान काटकर, इसको अवकोटक बंधन से बांधकर, इसका मांस काट कर, इसको वह मांस खिलाकर, सूली पर चढाकर, इसको शीघ्र ही मार देना । क्योंकि पापी को दंडित करना राजा का प्रथम कर्तव्य है ।

४९. राजा की इस प्रकार आज्ञा पाकर वे (राजपुरुष) रानी को लेकर राज-पथ पर आये और राजा के कथनानुसार इस प्रकार मनुष्यों के बीच में कहने लगे—

५० यह रानी देवदत्ता राजमाता की घात करने वाली है । अतः क्रुद्ध होकर राजा ने इसको इस प्रकार दंड दिया है ।

५१-५२. इस प्रकार उन्होंने मनुष्यों के सामने उसके नाक, कान काट कर, फिर उसे अवकोटक बंधन से बांधकर उसका मांस काटने लगे । फिर उसको उसका मांस खाने के लिए देने लगे । इस प्रकार उसे दंडित करने लगे । मनुष्य जैसा कर्म करता है उसका वैसा ही फल पाता है ।

५३. उसकी (देवदत्ता की) स्थिति को देखकर और पाप का फल साक्षात् देखकर द्रष्टाओं का मन कांपने लगा । पाप के प्रति उनमें भय उत्पन्न हुआ ।

५४-५५-५६. उन दिनों में जगवत्सल, मनुष्यों को सत्पथ दिखाने वाले, भव पीड़ितों को त्राण देने वाले, अनाथों के नाथ, सर्वज्ञ, मनुष्यों को तारने

सव्वाण भावाण य णायगो य, सव्वेसि मच्चाण य तारगो य ।
पायारविंदो सुरपूइओ य, वीरो तयाणिं चरमो जिणो य ।।५५।।

सो आसि भो ! तत्थ विरायमाणो, सीसेहि सद्धिं णयरीअ बाहिं ।
संगस्स लाहं भयवस्स भव्वा, मच्चा तयाणिं पउरं लहेंति ।।५६।।
(तीहिं विसेसगं)

सीसो य तेसिं पमुहो विणीओ, एगो तया गोयमणामधिज्जो ।
आयारदक्खो य सुएण जुत्तो, छट्ठं य भत्तं य तवं कुणेइ ।।५७।।

कम्माण णासो य तवेण होइ, अत्ताअ सुद्धी य तवेण होइ ।
रोआण णासो य तवेण होइ, वेल्लेज्ज[१९] मच्चा य तवम्मि णिच्चं ५८

छट्ठस्स भत्तस्स य पारणाय, सो एगया तत्थ पुरिं गमेइ ।
देवाइदत्तं इर दिण्णडंडं, पेच्छेइ चिंतेइ य माणसम्मि ।।५९।।

इत्थी इमा का अहुणा य अत्थि, कज्जं कडं किं अहमं इमाए ।
दंडेंति णं राय-णरा जओ य, कम्मं विणा णो य फलस्स लाहो ।।६०

पुच्छेइ सो कं मणुअं तयाणिं, णारी इमा संपइ विज्जए का ।
कज्जं कयं किं य इमाअ दुट्ठं, दंडेंति इत्थं य जओ इमे णं ।।६१।।

सोऊण वाणिं य इमं य तेसिं, भासेइ इत्थं मणुओ तया सो ।
पूसाइणंदिस्स णिवस्स राणी, इत्थी इयाणिं इमिआ हु अत्थि ।।६२।।

रायस्स माया विहया इमाए, कामंधलत्तं लहिऊण दाणिं ।
भूवेण कोवं पगएण दिण्णो, डंडो इमाए तुरिअं य इत्थं ।।६३।।

सोऊण से णं वयणं तयाणिं, चित्ते विआरेइ य गोयमो य ।
णाए य पुव्वम्मि भवम्मि णूणं, एआरिसं किं विहिअं कुकम्मं ।।६४।।

वेएइ सक्खं य जओ इयाणिं, हा ! णारयेहिं सरिसं य पीलं ।
कम्मं कडं णो मणुअं जहाइ, लोअम्मि णूणं य विणा फलाइं ।।६५।।
(जुग्गं)

चित्तम्मि इत्थं य विचिंतमाणो, भिक्खं य णेउं णयरिं गमेइ ।
घेत्तूण भिक्खं भयवस्स पासे, आगम्म इत्थं य णिवेयए सो ।।६६।।

---

१९. रमेरन् (रमेः संखुड्ड.........वेल्लाः—प्रा. व्या. ८।४।१६८)।

वाले, देवताओं द्वारा पूजितपाद, अंतिम तीर्थंकर भगवान् महावीर अपने शिष्यों के साथ नगर के बाहर विराज रहे थे। भव्य मनुष्य भगवान् के सान्निध्य का बहुत लाभ उठा रहे थे।

५७. गौतम स्वामी उनके प्रमुख शिष्य थे। वे विनम्र, आचारनिपुण तथा श्रुतसंपन्न थे। वे षष्ठभक्त (बेले-बेले की तपस्या) तप करते थे।

५८. तप के द्वारा कर्मों का नाश होता है, आत्मा की शुद्धि होती है तथा रोगों का नाश होता है, अतः मनुष्यों को सदा तप में रत रहना चाहिए।

५९. एक बार वे षष्ठभक्त तप के पारणे के लिए नगर में गये। तब उन्होंने दंडित की हुई देवदत्ता को देखा और मन में सोचा—

६०. यह स्त्री कौन है ? इसने क्या बुरा काम किया है ? जिससे राजपुरुष इसे दंड दे रहे हैं। क्योंकि बिना कर्म के फल की प्राप्ति नहीं होती।

६१. तब उन्होंने एक व्यक्ति को पूछा—यह स्त्री कौन है ? इसने क्या बुरा काम किया है ? जिससे ये (राजपुरुष) इसे इस प्रकार दंड दे रहे हैं।

६२. उनकी यह वाणी सुनकर एक व्यक्ति ने कहा—यह स्त्री राजा पुष्यनंदी की रानी है।

६३. इसने कामांध होकर अभी राजमाता को मार दिया है। अतः कुपित होकर राजा ने इसको शीघ्र ही इस प्रकार का दंड दिया है।

६४-६५. उसके इस प्रकार के वचन सुनकर गौतम स्वामी ने मन में सोचा—इस स्त्री ने निश्चित ही पूर्व भव में इस प्रकार का कोई कुकर्म किया है जिससे यह अभी नारकियों के समान दुःख भोग रही है। क्योंकि किए हुए कर्म मनुष्य को बिना फल दिए नही छोड़ते।

६६. मन में इस प्रकार विचार करते हुए वे भिक्षा के लिए नगर में गए। भिक्षा लेकर वे भगवान् के पास आए और निवेदन किया—

भिक्खाअ दंगम्मि जया गयो हं, एगा वसा रायपहम्मि दिट्ठा ।
दंडेंति जं रायणरा इआणिं, पीलं बहुं जा य लहेइ चित्ते ।।६७।।

इत्थी य का सा भयवं ! य अत्थि, पुव्वे भवे ताअ कडं कयं[20] किं ।
इत्थं जओ सा अणुहोइ पीलं, कम्माणि कत्तू ण चयेंति लोगे ।।६८।।

सोऊण वायं इर गोयमस्स, देवाइदत्ताअ भवं य पुव्वं ।
साहेइ वीरो य अमच्चपुज्जो, वेवेइ मच्चाण हिअं[21] य जो य ।।६९।।

इइ चउत्थो सग्गो समत्तो

---

२०. कार्यम् । २१. हृदयम् ।

६७-६८. भंते ! जब मैं भिक्षा के लिए नगर में गया तब राजमार्ग पर एक स्त्री को देखा जिसे राजपुरुष दंड दे रहे थे। वह मन में बहुत दुःख पा रही थी। भंते ! वह स्त्री कौन है ? उसने पूर्व भव में क्या कार्य किया है ? जो इस प्रकार वेदना का अनुभव कर रही है। क्योंकि कर्म कर्त्ता को नहीं छोड़ते।

६९. गौतम स्वामी की वाणी को सुनकर भगवान् महावीर ने देवदत्ता के पूर्व भव का वर्णन किया, जो मनुष्यों के हृदय को कंपित करता है।

चतुर्थ सर्ग समाप्त

पंचमो सग्गो

देवदत्ताए पुव्वभववण्णणं

इमम्मि[1] भारहे वासे, जंबूदीवस्स गोयमा ! ।
अहेसि य पुरी एगा, सुपइट्ठाभिहा पुरा ।।१।।

भूवई महासेणो य, रज्जं कुणीअ धम्मिओ ।
धारिणीपमुहा तस्स, महिसीओ सहस्सगा ।।२।।

धारिणीए य कुच्छीए, जाओ एगो सुओ तया ।
सिंहसेणो त्ति णामो से, दिण्णो य पिअरेहि य ।।३।।

सिक्खाजुग्गो जया हूओ, सिंहसेणो कुमारगो ।
पेसिओ गुरुणो पासे, भूवइणा य सो तया ।।४।।

पलद्धं विविहं णाणं, विणएण य तेण य ।
विणीओ पक्कलो लद्धुं, गुरुणो सविहे सुयं ।।५।।

लद्धूण सयला सिक्खा, जुग्गो जाओ जया य सो ।
जुवरायपयं दच्चा, रण्णा सम्माणिओ य सो ।।६।।

बुज्झा विवाहजुग्गं तं, से पाणिग्गहणं णिवो ।
कुणेइ वरकण्णाहिं, सद्धिं पंचसयेहि य ।।७।।

अहेसि पमुहा तासुं, राणी सामाभिहा तया ।
ताहि सव्वाहि सद्धिं सो, वसेइ कुमरो मुअं ।।८।।

एगम्मि वासरे भूवो, महासेणो मइं गओ ।
कुणेंति पउरं सोअं, पोरा राउलिया य से ।।९।।

काऊण चरमं किच्चं, भूवस्स कुमरो तया ।
अब्भिडेइ स-पासाये, विसण्णमाणसेण य ।।१०।।

---

१. अनुष्टुप् छंद ।

पंचम-सर्ग

१. हे गौतम ! जंबूद्वीप के इस भारतवर्ष में प्राचीन काल में सुप्रतिष्ठ नामक एक नगर था ।

२. राजा महासेन वहां राज्य करता था । उसके धारिणी प्रमुख एक हजार रानियां थी ।

३. धारणी की कुक्षि से एक पुत्र उत्पन्न हुआ । माता-पिता ने उसका नाम सिंहसेन रखा ।

४. जब सिंहसेनकुमार पढने योग्य हुआ तब राजा ने उसे गुरु के पास भेजा ।

५. उसने विनयपूर्वक विविध ज्ञान प्राप्त किया । क्योंकि विनीत व्यक्ति ही गुरु के पास ज्ञान प्राप्त कर सकता है ।

६. जब वह सब प्रकार की शिक्षा प्राप्त कर योग्य हो गया तब राजा ने उसे युवराजपद देकर सम्मानित किया ।

७ उसको विवाह-योग्य जानकर राजा ने पांच सौ श्रेष्ठ कन्याओं के साथ उसका विवाह कर दिया ।

८. उनमें श्यामा रानी प्रमुख थी । कुमार उन सबके साथ प्रसन्नतापूर्वक रहने लगा ।

९. एक दिन राजा महासेन की मृत्यु हो गई । नगरवासी तथा राजा के परिवार के लोग बहुत शोक करने लगे ।

१०. कुमार राजा का अंतिम कार्य (संस्कार) करके दुखी मन से अपने राज-महल में आया ।

तायस्स मइणो पच्छा, सिंहसेणो कुमारगो ।
हुवेइ रज्जसामी हु, पालेइ ससुहं पया[2] ।।११।।

रज्जपत्तीअ पच्छा सो, राणिं सामाभिहं णिअं ।
सम्माणं बहुलं देइ, गिद्धो ताए वसेइ य ।।१२।।

तं चइत्ताण अण्णाहिं, महिसीहिं समं तया ।
वत्तालावं ण कुव्वेइ, बहुमाणस्स का कहा ।।१३।।

भूवस्स ववहारं णं, दट्ठूण विसढं[3] तया ।
चिंतेंति ताण राणीणं, सवित्तीओ परोप्परं ।।१४।।

सामाराणीअ गिद्धो हु, होऊण संपयं णिवो ।
अम्हं कणीहि सद्धिं हा !, संलावं वि कुणेइ णो ।।१५।।

अयं से ववहारो य, किंचि वि उइयो णहि ।
विसमववहारेण, किं हवइ पिओ णरो ।।१६।।

अओ हिअयरो अम्हं, सामं हणेज्ज सत्तरं ।
ताए मिच्चुं गये भूवो, णूणं पिअकणीउ णे[4] ।।१७।।

देइस्सइ य सक्कारं, चिंतितत्ति माणसे ।
काहीअ जोअणं ताओ[5], तं मारेउं तया दुअं ।।१८।।(जुग्गं)

सा गुत्तजोअणा ताण, सामाराणीअ बुज्झिआ ।
होऊण खिन्नचित्ता सा, चिंतेइ णिअमाणसे ।।१९।।

ण णज्जए इयाणिं मं, मारिस्संति कहं इमा ।
चित्तम्मि चिंतिऊणं णं, होही भयाउला बहू ।।२०।।

गंतूण कोवगेहम्मि, अट्टज्झाणपरा तया ।
हुविऊण णिअं कालं, जवेइ खिन्नमाणसा ।।२१।।

भूवइणा जया णायं, दासीहिं य इणं खलु ।
सामा कोवघरे ठिच्चा, झंखेइ पउरं हिये ।।२२।।

खिप्पं समागयो भूवो, राणीए सविहे तया ।
पुच्छेइ अहुणा इत्थं, विलवेइ पिया ! कहं ।।२३।।(जुग्गं)

२. प्रजाः । ३. विषमम् । ४. अस्माकम् । ५. ताः ।

११. पिता की मृत्यु के बाद कुमार सिंहसेन राज्य का स्वामी हुआ। वह प्रजा का सुखपूर्वक पालन करने लगा।

१२. राज्य-प्राप्ति के बाद वह अपनी श्यामा नामक रानी को बहुत सम्मान देने लगा और उसमें आसक्त होकर रहने लगा।

१३. उसके (श्यामा के) अतिरिक्त वह अन्य रानियों के साथ बात भी नहीं करता था। तब सम्मान देने की बात ही कहां?

१४. राजा का इस प्रकार विषम व्यवहार देखकर उन रानियों की माताओं ने परस्पर विचार किया—

१५. श्यामा रानी में गृद्ध होकर राजा हमारी पुत्रियों के साथ बात भी नहीं करता है।

१६. राजा का यह व्यवहार तनिक भी उचित नहीं है। क्या विषम व्यवहार से कोई व्यक्ति प्रिय बन सकता है?

१७-१८. अतः हमारे लिए यही हितकर है कि हम शीघ्र ही श्यामा रानी को मार दें। उसके मर जाने पर राजा निश्चित ही हमारी प्रिय कन्याओं को सम्मान देगा। इस प्रकार परस्पर में चिंतन कर उन्होंने उसे मारने की योजना बनाई।

१९. श्यामा रानी को उनकी यह गुप्त योजना मालूम पड़ गई। वह खिन्न होकर मन में सोचने लगी—

२०-२१. न मालूम ये मुझे अब किस प्रकार मारेगीं। इस प्रकार मन में विचार कर वह बहुत भयाकुल हो गई और कोपगृह में जाकर आर्त्तध्यान करती हुई दुःखी मन से अपना समय बिताने लगी।

२२-२३. राजा को जब दासियों द्वारा यह मालूम पड़ा कि श्यामा रानी कोपगृह में स्थित होकर प्रचुर विलाप कर रही है, तब राजा शीघ्र ही रानी के पास आया और बोला—प्रिये! तुम क्यों इस प्रकार अभी रो रही हो?

अक्कोसिआ य केणावि, किं ताडिआहवा खलु ।
विसण्णवयणा इत्थं, जओ दीसइ संपयं ॥२४॥

साहसु[६] तुरिअं तस्स, णामधिज्जं तुमं ममं ।
दाऊण तं जओ डंडं, तुं पसण्णं कुणेज्ज हं ॥२५॥

सोच्चा भूवइणो वाणिं, सामाराणी भणेइ सा ।
अक्कोसिआ ण केणावि, णो ताडिआ य हं पिओ ! ॥२६॥

विसायस्स परं बीअं, जं मम खलु विज्जए ।
पिओ ! दत्तावहाणेणं, भवं सुणउ संपयं ॥२७॥

मं चइत्ताण अण्णाओ, राणीओ देइ णो भवं ।
सक्कारं संपयं किंचि, इइ णाऊण संपयं ॥२८॥

ताणं माआहि दाणिं णं, मिलेऊण य णिण्णिअं ।
अवमाणस्स कण्णाणं, सामाराणी हु कारणं ॥२९॥

ताए मुद्धो हुवेऊण, भूवो ण बहुमण्णइ ।
संपइ अम्ह कण्णाउ, अओ हणेज्ज तं कहं ॥३०॥
(तीहिं विसेसगं)

पिओ ! मज्झ विसायस्स, हेऊ अयं खु विज्जए ।
कया कहं हणिस्संति, ता अंबा मं ण णज्जए ॥३१॥

सोच्चा ताए इमं वत्तं, उप्पालेइ[७] णिवो तया ।
पिये ! माइं विलावं तुं, इत्थं कुणसु संपयं ॥३२॥

को तुमं हणिउं सक्को, विज्जमाणे मए किर ।
रक्खगा बलिणो जस्स, को तं हंतुं य पच्चलो ॥३३॥

जो चेट्ठिस्सेइ मारेउं, मज्झ पाणप्पिअं पिअं ।
आमंतिस्सेइ सो णूणं, मच्चुं णिअकये दुअं ॥३४॥

अओ दुक्खं चइत्ताणं, सत्था हुवसु संपयं ।
कुणसु स-कयं[८] सव्वं, पसण्णमाणसेण हु ॥३५॥

---

६ कथय । ७. कथयति । ८. स्वकार्यम् ।

२४. क्या किसी ने तुझ पर आक्रोश किया है या किसी ने तुझे ताडना दी है ? जिससे तुम इस प्रकार खिन्नवदन दिखाई दे रही हो।

२५. तुम शीघ्र ही मुझे उसका नाम बताओ। जिससे मैं उसे दंड देकर तुम्हें प्रसन्न करूं।

२६. राजा की बात सुनकर श्यामा रानी ने कहा—प्रिये ! न तो किसी ने मुझ पर आक्रोश किया है और न मुझे ताडना दी है।

२७. किंतु मेरे दुःख का जो कारण है उसे आप ध्यान से सुनें—

२८-२९-३०. आप मुझे छोड़कर अन्य रानियों का कुछ भी सत्कार नहीं करते हैं, यह जानकर उन रानियों की माताओं ने परस्पर में यह निर्णय किया है कि हमारी पुत्रियों के प्रति इस तिरस्कार का कारण श्यामा रानी है। उसमें मुग्ध होकर राजा हमारी कन्याओं को बहुमान नहीं देता है। अतः किसी प्रकार उसे मार देना चाहिए।

३१. हे प्रिय ! मेरे दुःख का यही कारण है। न मालूम वे माताएं मुझे कब, किस प्रकार मार देंगी।

३२. उसकी यह बात सुनकर राजा ने कहा—प्रिये ! तुम इस प्रकार विलाप मत करो।

३३. मेरी विद्यमानता में कौन तुम्हें मार सकता है ? क्योंकि जिसके रक्षक शक्तिशाली हैं उसे कौन मार सकता है ?

३४. जो मेरी प्राणप्रिया को मारने की चेष्टा करेगा वह निश्चित ही अपने लिए मृत्यु को आमंत्रित करेगा।

३५. अतः तुम दुःख को छोड़कर स्वस्थ होओ और प्रसन्नमन से अपने सब कार्य करो।

दाऊण संतणं इत्थं, सामाराणिं महीवई ।
आओ[९] वाउलचित्तेण, रायसहाअ तक्खणं ।।३६।।

कोडुंबिअणरा केइ, आमंतिऊण जंपिअं ।
भे कूडागारसालं य, एगं महं मणोहरं ।।३७।।

अणेगखंभसंजुत्तं, णिम्मावेह य सत्तरं ।
से[१०] णयरस्स बाहिं य, आणत्ति मज्झ विज्जए ।।३८।।(जुग्गं)

मा कुणह विलंबं भे, अस्सि कज्जम्मि संपयं ।
जया पूरेज्ज णिम्माणं, णिवेएज्जा महं तया ।।३९।।

आणं लद्धूण भूवस्स, णिये ठाणम्मि ते गया ।
आढत्तं ताअ णिम्माणं, तेहिं तयाणि सत्तरं ।।४०।।

सा कूडागारसाला य, णिम्मिआ सुरम्मा जया ।
तया णिवेइअं णेहिं, इत्थं भूवइणो दुअं ।।४१।।

सामि ! भवाण आणाए, अम्हे णिम्माविआ दुअं ।
तं[११] कूडागारसाला य, णाणाखंभजुआ हुणा ।।४२।।

सोऊण तेसि वाणिं णं, पसण्णमाणसो णिवो ।
दाऊण बहुलं वित्तं, विसज्जेइ तयाणि ता ।।४३।।

पच्छा आमंतिऊणं सो, दूअं एगं कहेइ य ।
सामाराणिं चइत्ताणं, अण्णराणीण माइणं[१२] ।।४४।।

पासे गंतूण साहेज्जा, तुब्भे आगारिआ दुअं ।
भूवेण सिंहसेणं हु, आगच्छेज्ज अओ तहिं ।।४५।।(जुग्गं)

सोच्चा दूअमुहावाणिं, ता मोअं पउरं गया ।
आगमेंति तहिं झत्ति, विहूसियतणू तया ।।४६।।

भूवेण सिंहसेणं य, सक्कारिआ बहुं य ता ।
दिण्णा णिवसिउं ताणं, सा कूडागारसालगा ।।४७।।

पेसिअं भोअणं साउं, रम्मं वत्थं य भूसणं ।
सम्माणं लहिऊणं णं, भूवेण ता मुअं गया ।।४८।।

---

९. आगतः । १०. अस्य । ११. तं वाक्योपन्यासे-(प्रा. व्या. ८।२।१७६) ।
१२. यहां छंद की दृष्टि से माईणं का माइणं हुआ है ।

३६. इस प्रकार श्यामारानी को सांत्वना देकर राजा व्याकुल मन से राज्य-सभा में आया।

३७-३८. उसने कुछ कौटुम्बिक पुरुषों को बुलाकर कहा—तुम लोग नगर के बाहर एक सुन्दर और अनेक खम्भों से युक्त कूटाकारशाला का शीघ्र ही निर्माण करवाओ—यह मेरी आज्ञा है।

३९. तुम लोग इस कार्य में विलंब मत करना। जब उसका निर्माण कार्य पूर्ण हो जाए तब मुझे निवेदित कर देना।

४०. भूपति का निर्देश पाकर वे अपने स्थान पर आ गए और शीघ्र ही उसका निर्माण-कार्य शुरू कर दिया।

४१. जब वह सुरम्य कूटाकारशाला बन गई तब उन्होंने तत्काल राजा को इस प्रकार निवेदन किया—

४२. स्वामिन्! आपके निर्देश से हमने अनेक खंभों से युक्त एक कूटाकार-शाला बनवा दी है।

४३. उनकी इस वाणी को सुनकर राजा प्रसन्न हुआ। उसने उनको बहुत धन देकर तत्काल विसर्जित कर दिया।

४४-४५. तत्पश्चात् राजा ने एक दूत को बुलाकर इस प्रकार कहा—तुम लोग श्यामारानी के अतिरिक्त अन्य रानियों की माताओं के पास जाओ और कहो—राजा सिंहसेन ने तुम लोगों को शीघ्र बुलाया है। अतः वहां आओ।

४६. दूत के मुख से इस प्रकार की बात सुनकर वे बहुत प्रसन्न हुई तथा सज्जित होकर शीघ्र ही वहां आई।

४७. राजा सिंहसेन ने उनका बहुत स्वागत किया तथा रहने के लिए कूटा-कारशाला दी।

४८. राजा ने वहां पर स्वादिष्ट भोजन, सुन्दर वस्त्र और आभूषण भेजे। राजा से इस प्रकार सम्मान पाकर वे प्रसन्न हुई।

राईअ समये सव्वा, सुत्ता चिंताविवज्जिआ ।
णो आसि काअ चित्तम्मि, अणिट्ठस्स य कप्पणा ।।४९।।

अद्धरत्तीअ कालम्मि, सिंहसेणो पयावई ।
सवीसत्थणरो तत्थ, सहसा य समागओ ।।५०।।

पिहिऊण दुवाराइं, समत्थाइं य ताअ सो ।
अग्गिं पज्जालिऊणं हा !, मारेइ सयला य ता ।।५१।।

जाहिं विचिंतिअं चित्ते, सामं विहणिउं तया ।
ता सव्वा णिहणं पत्ता, पज्जलंतेण वण्हिणा ।।५२।।

अओ ण को वि रक्खेज्जा, कुवियारं य कं पइ ।
कूवं खणेइ अण्णट्ठं, कहं णाइं पडेहिइ ।।५३।।

काऊण कुकयं इत्थं, सिंहसेणो णिवो तया ।
लहेंतो हिअये मोअं, पासायम्मि समागओ ।।५४।।

सामाराणीअ गिद्धेण, सिंहसेणेण गोयमो ! ।
एयारिसं कडं कम्मं, फलं जस्स य कुच्छिअं ।।५५।।

भुंजेंतो पउरा भोआ, सो सामाअ समं तया ।
चोत्तीससयवासाइं, रज्जं कुणेइ णिब्भयं ।।५६।।

लद्धूण णिहणं पच्छा, सिंहसेणो धरावई ।
छट्ठमे णिरये वासे, उववन्नो कुकम्मओ ।।५७।।

भोत्तूण पउरं पीलं, सिंहसेणस्स जीवगो ।
जाओ हु णिगमे अस्सिं, दत्तगाहावईण य ।।५८।।

भारिआए य कुच्छीए, पुत्तीरूवेण संपयं ।
'देवदत्त' त्ति[13] णामेण, पसिद्धा सा इहं गया ।।५९।।(जुग्गं)

रायपुत्तेण पूसाइ-णंदिणा य समं तया ।
इमाए उवयामो य, जाओ सब्भग्गओ किर ।।६०।।

दिट्ठा जा तुमए मग्गे, रायणरेहि ताडिआ ।
पूसणंदिस्स राणी सा, देवदत्ता हु विज्जए ।।६१।।

१३. 'देवदत्ता' इति ।

४९. रात्रि में वे सब निश्चिन्त होकर सो गई। किसी के मन में अनिष्ट की कल्पना नहीं थी।

५०. अर्ध रात्रि के समय राजा सिंहसेन विश्वस्त व्यक्तियों को लेकर अचानक वहां आया।

५१. उसने कूटाकारशाला के सब दरवाजे बंदकर और अग्नि जलाकर उन सबको मार दिया।

५२. जिन्होंने श्यामा रानी को मारने का मन में विचार किया था वे सभी जलती हुई अग्नि से मृत्यु को प्राप्त हो गई।

५३. अतः किसी को किसी के प्रति बुरा विचार नहीं रखना चाहिए। जो दूसरों के लिए कुआं खोदता है वह उसमें कैसे नहीं गिरेगा ?

५४. इस प्रकार का कुकर्म करके राजा सिंहसेन प्रसन्न होकर महल में आया।

५५. हे गौतम ! श्यामा रानी में आसक्त होकर राजा सिंहसेन ने इस प्रकार का कार्य किया जिसका फल बुरा है।

५६. श्यामा रानी के साथ प्रचुर भोग भोगते हुए उसने ३४०० वर्ष तक निर्भयता पूर्वक राज्य किया।

५७. तत्पश्चात् मर कर वह कुकर्मों के कारण छट्ठे नरक में उत्पन्न हुआ।

५८-५९. वह सिंहसेन राजा का जीव वहां (नरक में) वेदना भोगकर इस नगर में दत्तगाथापति की पत्नी की कुक्षि से पुत्रीरूप में उत्पन्न हुआ। वह देवदत्ता नाम से प्रसिद्ध हुई।

६०. सद्भाग्य से इसका राजपुत्र पुष्यनंदी के साथ विवाह हुआ।

६१. तुमने रास्ते में राजपुरुष द्वारा ताडित जिस स्त्री को देखा था वह राजा पुष्यनंदी की रानी देवदत्ता है।

पुव्वे भवे वि ताए य, हयं एगूणगाण य।
पंचदेवीसयाणमेगूणपंचपसूसयं[१४] ॥६२॥

अस्सिं भवे वि णाए य, रायमाया हया हुणा।
काऊण दुक्कयं इत्थं, भोएइ विअणं[१५] बहुं ॥६३॥(जुग्गं)

कम्माइं जारिसाइं य, कुणेइ मणुओ सइ[१६]।
फलाइं तारिसाइं सो, लहेइ णत्थ संसओ ॥६४॥

दुक्कम्मं कुणिउं मच्चो, सतंतो[१७] भुवणे सया।
भोत्तुं परं फलं तेसिं, परतंतो विहाइ[१८] सो ॥६५॥

सोऊण देवदत्ताए, पुव्वभवस्स वण्णणं।
पुच्छेइ गोयमो वीरं, जिण्णासाउरमाणसो ॥६६॥

इमिआ देवदत्ता य, कुडिलकम्मकारिआ।
लद्धूण णिहणं भंते !, जम्मिहिइ कहं इओ ॥६७॥(जुग्गं)

सुणिआण इणं पण्हं, गोयमस्स तयाणि य।
साहेइ भयवं वीरो, सव्वभावाण णायगो ॥६८॥

लहिऊण इओ मच्चुं, देवदत्ता इमा किर।
पढमे णिरये वासे, उप्पज्जिहिइ गोयमो ! ॥६९॥

तत्थट्ठं सा ठिइं भोच्चा, इक्कगसागरोवमं।
णिस्सरिऊण तत्तो य, ताए जीवो य गोयमो ! ॥७०॥

जम्मं अणेगहुत्तं हु, मरणं वि तहेव य।
कुणंतो भुवणे अस्सिं, भमिस्सइ पुणो पुणो ॥७१॥

पच्छा कुकम्मणासम्मि, पुण्णोदये तयाणि य।
कस्सावि सेट्ठिणो गेहे, गंगापुराभिहे पुरे ॥७२॥

लद्धूण साहुणो संगं, सोच्चा धम्मं तहिं तया।
वेरग्गं लहिऊणं सा, पव्वज्जं सीकुणिस्सइ ॥७३॥

दिक्खं सम्मं य पालेंतो, समाहिपुरिमं[१९] तया।
लद्धुआण मइं अज्जे[२०], गमिस्सइ सुरालये ॥७४॥

---

१४. 'पसूसयं' इति मातृशतम्। १५. वेदनाम्। १६. सदा। १७. स्वतन्त्रः।
१८. विभाति। १९. समाधिपूर्वम्। २०. आद्ये।

६२-६३. इसने पूर्वभव में भी ४९९ रानियों की ४९९ माताओं को मारा था तथा इस भव में भी राजमाता को मार डाला। इस प्रकार दुष्कर्म करके वह प्रचुर वेदना भोग रही है।

६४. मनुष्य जैसे कर्म करता है वह वैसे ही फल पाता है—इसमें संदेह नहीं है।

६५. मनुष्य दुष्कर्म करने में संसार में सदा स्वतंत्र है। लेकिन उनका फल भोगने में वह परतंत्र है।

६६-६७. देवदत्ता के पूर्व भव का वर्णन सुनकर जिज्ञासुमनवाले गौतम स्वामी ने भगवान् को पूछा—भंते ! यह कुकर्म करने वाली देवदत्ता यहां से मरकर कहां उत्पन्न होगी ?

६८-६९. गौतम स्वामी के इस प्रश्न को सुनकर भगवान् महावीर ने कहा—हे गौतम ! यह देवदत्ता यहां से मरकर प्रथम नरक में उत्पन्न होगी।

७०-७१ वहां की एक सागरोपम की स्थिति भोगकर, वहां से निकलकर उसका जीव अनेक बार जन्म-मरण करता हुआ इस संसार में बार-बार भ्रमण करेगा।

७२. तत्पश्चात् दुष्कर्म के नाश होने पर तथा पुण्योदय से वह गंगापुर नगर में किसी श्रेष्ठी के घर में उत्पन्न होगी।

७३. वहां साधुओं की संगति प्राप्त कर, धर्म सुनकर और वैराग्य पाकर वह दीक्षा ग्रहण करेगी।

७४. प्रव्रज्या का अच्छी तरह से पालन कर वह समाधिपूर्वक मरकर प्रथम देवलोक में उत्पन्न होगी।

तत्थट्ठं य ठिइं भोच्चा, उप्पज्जिहिइ सो तया ।
महाविदेहखेत्तम्मि, कस्सि सेट्ठिकुले वरे ।।७५।।

तत्थ वि मुणिणो संगं, लद्धुं धम्मं सुणिस्सइ ।
घेत्तूण चरमे दिक्खं, महाणंदं[२१] लहिस्सइ ।।७६।।

इइ पंचमो सग्गो समत्तो

इइ विमलमुणिणा विरइयं पज्जप्पबंधं देवदत्ताचरियं समत्तं

---

२१. मोक्षम् ।

७५. वहां की (देवलोक) स्थिति भोगकर वह महाविदेह क्षेत्र में किसी श्रेष्ठी कुल में उत्पन्न होगी ।

७६. वहां भी साधु की संगति पाकर धर्म श्रवण करेगी । अंत में प्रव्रज्या ग्रहण कर मोक्ष प्राप्त करेगी ।

पंचम सर्ग समाप्त

विमलमुनिविरचित पद्यप्रबंधदेवदत्ताचरित्र समाप्त

सुबाहुचरियं

कथावस्तु

सुबाहुकुमार हस्तिशीर्षनगर के राजा अदीनशत्रु का पुत्र था। वह सर्वप्रिय, इष्ट, कांत, मनोज्ञ, मनाम, सुभग, प्रियदर्शन, सौम्य और सुरूप था। जब वह यौवनावस्था को प्राप्त हुआ तब पांच सौ कन्याओं के साथ उसका पाणिग्रहण हुआ। वह उनके साथ पंक में कमल की तरह रहने लगा।

एक बार हस्तिशीर्षनगर में भगवान् महावीर का आगमन हुआ। जनता भगवान् के दर्शनार्थ गई। राजा अदीनशत्रु भी सपरिवार गया। भगवान् ने धर्मोपदेश सुनाया। जनता ने यथाशक्ति नियम ग्रहण किये। सुबाहुकुमार ने भगवान् से कहा—भंते! मैं आपके समीप अनगार धर्म स्वीकार करने में असमर्थ हूं, अतः द्वादशविध अगारधर्म (गृहस्थ धर्म) स्वीकार करना चाहता हूं। भगवान् ने कहा—अहासुहं देवाणुप्पिया! मा पडिबंधं करेह—जैसा तुम्हें सुख हो उसमें विलंब मत करो।

सुबाहुकुमार भगवान् से अगार धर्म स्वीकार कर अपने महलों में आ गया। उसकी ऋद्धि देखकर गणधर गौतम ने भगवान् से पूछा—भंते! यह सर्वप्रिय और मनोज्ञ कैसे हुआ है? यह पूर्वभव में कौन था? इसने कौन-सा ऐसा कर्म किया था जिससे इस प्रकार की मानुषिकी ऋद्धि प्राप्त की है? तब भगवान् ने उसके पूर्वभव का वर्णन करते हुए सुमुख गाथापति के जीवन का वर्णन किया। सुबाहुकुमार के पूर्वभव को सुनकर गणधर गौतम ने पूछा—क्या यह आपके पास प्रव्रज्या ग्रहण करेगा? भगवान् ने कहा—हां। कालान्तर में भगवान् महावीर ने हस्तिशीर्ष नगर से विहार कर दिया। सुबाहुकुमार अगारधर्म का पालन करता हुआ समय व्यतीत करने लगा। एक बार मध्यरात्रि में धर्मजागरणा करते हुए उसके मन में विचार आया—यदि भगवान् महावीर यहां आये तो मैं उनसे प्रव्रज्या ग्रहण कर लूं। भगवान् ने अपने ज्ञानबल से उसके मानसिक विचार जान लिये। ग्रामानुग्राम विहरण करते हुए वे पुनः हस्तिशीर्ष नगर आये। जनता भगवान् के दर्शनार्थ गई। सुबाहुकुमार भी गया। भगवान् ने धर्मोपदेश सुनाया। प्रवचनोपरान्त सुबाहुकुमार ने भगवान् से निवेदन किया—मैं आपके पास प्रव्रज्या ग्रहण करना चाहता हूं। भगवान् ने कहा—अहासुहं देवाणुप्पिया! मा पडिबंधं करेह।

सुबाहुकुमार अपने महलों में आया। उसने माता-पिता के समक्ष

अपने प्रव्रज्या-ग्रहण के विचार रखे। माता-पिता ने उसे विविध प्रकार से समझाने का प्रयत्न किया। जब वह नहीं माना तब उसे प्रव्रज्या-ग्रहण करने की अनुमति दे दी। तत्पश्चात् सुबाहुकुमार अपनी पत्नियों के पास आया। उनसे भी प्रव्रज्या-ग्रहण करने की अनुमति मांगी। उन्होंने भी उसे विविध प्रकार से समझाने का प्रयास किया। जब वह नहीं माना तब उसे आज्ञा दे दीं। राजा अदीनशत्रु ने सुबाहुकुमार का दीक्षा महोत्सव मनाया। वह उसे लेकर भगवान् के समीप आया और कहा—इसे प्रव्रज्या प्रदान करें। भगवान् ने सुबाहुकुमार को दीक्षा प्रदान की। सुबाहुकुमार मुनि बन गया। भगवान् ने उसे सब कार्य यत्नापूर्वक करने की शिक्षा दी। सुबाहुकुमार ने अनेक वर्षों तक श्रामण्यपर्याय का पालन किया। अन्त में अनशनपूर्वक मृत्यु का वरण कर वह सौधर्म देवलोक में देव बना। वहां से च्यवन कर मनुष्य और देव संबंधित सर्व ग्यारह भव करके सिद्ध, बुद्ध, मुक्त होगा।

पढमो सग्गो

मंगलायरणं

झाऊण[1] चित्ते सिरिभिक्खुसामिं, तेरापहेसं बलसंजुयं य।
दीवासुअं विग्घविणासगारिं, णिम्मेमि कव्वं य सुबाहुणामं ॥१॥

दाणं य सीलं य तवं य भावो, मोक्खस्स चत्तारि पहा य संति।
दाणेण मच्चा पउरा इयाणिं, पारं गया भो भवसागरस्स ॥२॥

तेसुं सुबाहू वि हु अत्थि एगो, रम्मं चरित्तं गहिऊण तस्स।
कव्वं इयाणिं णिअगं कुणेमि, णेऊण हं पाइअभारइं य ॥३॥

अस्सिं[2] भारहवासे, आसि पुरा हत्थिसीसणामपुरं।
भूवो अदीणसत्तू, कुणेइ तत्थ ससुहं रज्जं ॥१॥

तस्स धारिणीपमुहा, अहेसि खु सहस्साओ राणीओ।
विणीया य कुलसेट्ठा, भूव-इंगियाणुसारीओ ॥२॥

धारिणीअ कुच्छीए, जाओ एगो य पुण्णवं पुत्तो।
भूवइणा से दिण्णो, सुबाहुकुमारो त्ति य णामो ॥३॥

पालेउं य रक्खिआ, खिड्डवइणा पंचधाईउ कुसला।
ताणं सुसंरक्खणे, सणिअं सणिअं[3] सो वड्ढइ ॥४॥

सिक्खाजुग्गो जाओ, जया सो तयाणिं णिवेण पेसिओ।
पढिउं गुरुणो पासे, अत्थि णाणं तइयं णयणं ॥५॥

आसि स सव्वेसि पियो, इट्ठो कंतो मणुण्णो मणामो।
सुहगो य पियदंसणो, सोमो सुरूवो य तयाणिं ॥६॥

विणीयभावेणं सो, णेइ गुरुणो अब्भासे य णाणं।
विणीओ च्चेअ सक्को, णेउं सुयं गुरुणो सविहम्मि ॥७॥

---

१. छंद-इंद्रवज्रा। २. आर्याछंद। ३. शनैः शनैः (शनैसो डिअम्— प्रा. व्या. ८।२।१६८)।

प्रथम सर्ग

मंगलाचरण

१. मैं विघ्ननाशक, शक्तिमान्, तेरापंथ के आद्य प्रवर्तक दीपासुत श्री भिक्षु स्वामी का मन में ध्यान कर सुबाहुकुमार नामक काव्य की रचना करता हूं।

२. दान, शील, तप और भाव—ये चार मोक्ष के मार्ग हैं। दान से अनेक मनुष्यों ने भव-समुद्र को पार किया है।

३. उनमें एक सुबाहुकुमार भी है। उसका रम्य चरित्र ग्रहण कर मैं प्राकृत भाषा में अपने काव्य का निर्माण करता हूं।

१. प्राचीन काल में इस भारतवर्ष में हस्तिशीर्ष नामक एक नगर था। वहां राजा अदीनशत्रु सुखपूर्वक राज्य करता था।

२. उसके धारिणीप्रमुख एक हजार रानियां थीं। वे सभी नम्र, कुलीन और राजा के इंगित का अनुसरण करने वाली थीं।

३. धारिणी की कुक्षि से एक पुण्यवान् पुत्र उत्पन्न हुआ। राजा ने उसका नाम सुबाहुकुमार रखा।

४. राजा ने उसका पालन करने के लिए पांच निपुण धायमाताओं को रखा। उनके संरक्षण में वह शनैः-शनैः बढ़ने लगा।

५. जब वह पढ़ने योग्य हुआ तब राजा ने उसे पढने के लिए गुरु के समीप में भेजा। क्योंकि ज्ञान तीसरा नेत्र है।

६. वह सर्वप्रिय, इष्ट, कांत, मनोज्ञ, मनाम, सुभग, प्रियदर्शन, सौम्य और सुरूप था।

७. वह विनम्रभाव से गुरु के पास में ज्ञान प्राप्त करने लगा। विनीत ही गुरु के समीप ज्ञान प्राप्त करता है।

जया स तारुण्णं गओ, तया पसण्णमणेणं राएणं ।
विहिओ से वीवाहो[4], पंचसयबालाहिं सद्धिं ।।८।।

ताहिं समं णिवसंतो, कुमारो पंकिले अरविन्दं विव ।
जवेइ[5] णिअगं कालं, धम्मपरायणहिअयो हु सो ।।९।।

एगया य समागओ, तत्थ गामाणुगामं विहरंतो ।
समणो भगवं वीरो, चरमतित्थयरो सविणेओ ।।१०।।

ठाही णयरस्स बाहिं, पुप्फकरंडगणामे उज्जाणे ।
सोऊण समागमणं, पहुणो कण्णाकण्णियाए ।।११।।

दंसिउकामा मच्चा, गच्छन्ति तह तया अहमहमिआअ ।
गिहंगणे आआए, गंगाअ को ण्हाउं णेच्छइ ।।१२।।
(जुग्गं)

अदीणसत्तू राया, ससयणो गच्छइ दंसणं काउं ।
काऊण से दंसणं, मण्णइ सो अप्पणो[6] धण्णं ।।१३।।

देइ धम्मोवएसं, तं विसालं परिसं तया भगवं ।
तं सोऊण भव्वा, गिण्हेंति जहाबलं णियमा ।।१४।।

सोच्चाणं उवएसं, सुबाहुकुमारो विहुणो अंतिये ।
आगंतूणं इत्थं, णिवेयए णिअगं भावणं ।।१५।।

णाइं अहं समत्थो, गहिउं अणगारधम्मं इयाणिं ।
भवाण पासम्मि भो ! कंखेमि अओ अगारधम्मं गहिउं ।।१६।।

सुणिआण से णं वयं, साहीअ दयालू भगवं वीरो ।
माइं कुण पडिबंधं, अहासुहं देवाणुप्पिया ! ।।१७।।

भगवस्स पासे तया, दुवालसविहं इर अगारधम्मं ।
घेत्तुआण कुमारो, अइच्छीअ[7] णिअग-पासायं ।।१८।।

---

४. विवाहः (घञ्वृद्धेर्वा—प्रा. व्या. ८।१।६८) इति सूत्रेण विवाहो, वीवाहो द्वौ भवतः। ५. यापयति (यापेर्जव.-प्रा. व्या ८।४।४०)। ६. स्वयं (स्वयमोऽर्थे अप्पणो न वा—प्रा. व्या. ८।२।२०९)। ७. अगमत् (गमेरई-अइच्छ······ प्रा. व्या. ८।४१६२)।

८. जब वह तरुण हुआ तब राजा ने पांच सौ कन्याओं के साथ उसका विवाह कर दिया ।

९. सुबाहुकुमार उनके साथ कीचड़ में कमल की तरह रहता हुआ अपना समय बिताने लगा । उसका हृदय धर्मपरायण था ।

१०. एक बार चरम तीर्थंकर श्रमण भगवान् महावीर स्वामी शिष्यों सहित ग्रामानुग्राम विहरण करते हुए वहां आये ।

११-१२. वे नगर के बाहर पुष्पकरंडक नामक उद्यान में ठहरे । एक दूसरे से भगवान् का आगमन सुनकर जनता अहंपूर्विका दर्शन करने के लिए वहां गई । घर में आई हुई गंगा में कौन स्नान करना नहीं चाहता ?

१३. राजा अदीनशत्रु स्वजनों के साथ दर्शन करने के लिए गया । उनके दर्शन कर वह स्वयं को धन्य मानने लगा ।

१४. भगवान् ने तब उस विशाल परिषद् को धर्मोपदेश सुनाया । उसको सुनकर भव्य जन यथाशक्ति नियम ग्रहण करते हैं ।

१५. उपदेश सुनकर सुबाहुकुमार भगवान् के समीप आया और इस प्रकार अपनी भावना निवेदित की—

१६. मैं अभी आपके पास अनगारधर्म ग्रहण करने के लिए समर्थ नहीं हूं । अतः अगारधर्म ग्रहण करना चाहता हूं ।

१७. उसके इस वचन को सुनकर कृपालु भगवान् महावीर ने कहा—'अहासुहं देवाणुप्पिया'—तुम्हें जैसा सुख हो उसमें विलम्ब मत करो ।

१८. भगवान् के समीप में द्वादशविध अगारधर्म को ग्रहण कर सुबाहुकुमार अपने महल में आ गया ।

दट्ठुआण से इड्ढि[8], पुच्छीअ गोयमो तयाणि भगवं ।
कहं अयं सव्वेसिं, होहीअ पिओ मणुण्णो य ।।१९।।

इमो को हु पुव्वभवे, णेणं किं कयं एरिसं कम्मं ।
जओ इह एयारिसी, लद्धा माणुस्सिगी इड्ढी ।।२०।।

सोऊण इणं पण्हं, इंदभूइगोयमस्स चरमजिणो ।
चवीअ[9] णाणबलेणं, तया सुबाहुणो पुव्वभवं ।।२१।।

इइ पढमो सग्गो समत्तो

---

८. ऋद्धिम् (श्रद्धर्द्धि-मूर्धाऽर्धेऽन्तेवा—प्रा. व्या. ८।२।४१)। ९. अकथयत् (कथेर्वज्जर…… प्रा. व्या. ८।४।२)।

१९-२०. उसकी ऋद्धि को देखकर गौतमस्वामी ने भगवान् को पूछा—यह कैसे सब का प्रिय और मनोज्ञ हुआ है ? यह पूर्व भव में कौन था ? इसने कौन-सा ऐसा कर्म किया था जिससे इस प्रकार की मानुषिकी ऋद्धि प्राप्त की है ?

२१. इंद्रभूति गौतम का यह प्रश्न सुनकर तब चरम तीर्थंकर ने अपने ज्ञान-वल से सुबाहुकुमार का पूर्वभव कहा ।

प्रथम सर्ग समाप्त

बीओ सग्गो

इमम्मि[1] भारहे वासे, हत्थिणाउरणामगं ।
समिद्धं त्थिमियं रिद्धं, अहेसि णयरं पुरा ।।१।।

गाहावई तहिं एगो, अड्ढो सुमुहणामगो ।
वसीअ ससुहं तत्थ, सया धम्मपरायणो ।।२।।

एगया णयरे तम्मि, धम्मघोसो मुणीवई ।
पंचसएहि दक्खेहिं, सीसेहिं सह आगओ ।।३।।

सोच्चा आगमणं तस्स, दंसणं काउमाणसा ।
वच्चेंति माणवा तत्थ, अहंपुव्वं हु सत्तरं ।।४।।

काऊण दंसणं तस्स, धण्णं मण्णेंति अप्पगं ।
सुणेंति उवएसं सिं[2], जीअकल्लाणकारगं ।।५।।

सोऊण उवएसं ते, अइच्छेंति णिअं गिहं ।
भिक्खट्ठं मुणिणो पच्छा, गच्छन्ति तम्मि पत्तने ।।६।।

आसि से गणिणो एगो, मासक्खमणकारगो ।
सीसो सुदत्तणामो हु, तवे सुलीणमाणसो ।।७।।

भिक्खट्ठं एगया सो य, अपुव्वबलधारगो ।
गओ णिवेसणे तम्मि, मासक्खमणपारणे ।।८।।

उच्चनीयकुलेसुं सो, ढुण्ढुल्लंतो[3] समागओ ।
सुमुहस्स गिहब्भासे, विणा पुरिमसूयणं[4] ।।९।।

अकप्पियं समायातं, दट्ठूण णिअमंदिरे ।
सुमुहो मुइयचित्तो, गच्छेइ तस्स सम्मुहे ।।१०।।

वंदित्ता सविहिं तं सो, णिवेयए तयाणि य ।
धण्णो अज्ज दिणो मज्झ, हुवीअ तुह दंसणं ।।११।।

---

१. अनुष्टुप् छंद । २. तेषाम् । ३. भ्रमंतो (भ्रमेष्टिरिल्लढुण्ढुल्ल····प्रा. व्या. ८।४।१६१) । ४. पूर्वसूचनाम् ।

दूसरा सर्ग

१. प्राचीन काल में इस भारतवर्ष में हस्तिनापुर नामक समृद्ध, स्तिमित और ऋद्ध नगर था।

२. वहां सुमुख नामक एक आढ्य गाथापति रहता था। वह सदा धर्म में लीन था।

३. एक बार उस नगर में धर्मघोष नामक आचार्य पांच सौ शिष्यों सहित आये।

४. उनका आगमन सुनकर उनके दर्शन करने के इच्छुक मनुष्य अहंपूर्विका वहां गये।

५. वे उनका दर्शन कर अपने को धन्य मानने लगे तथा उनका उपदेश सुनने लगे, जो जीवन का कल्याण करने वाला था।

६. उपदेश सुनकर वे अपने घर चले गये। मुनिजन भिक्षा के लिए उस नगर में गये।

७. उस आचार्य के सुदत्त नामक एक शिष्य था। वह मासक्षपण तप करता था। तपस्या में उसका मन लीन था।

८. एक बार वह मासक्षपण तप के पारणे के दिन उस नगर में भिक्षा के लिए गया।

९. उच्च, नीच कुलों में घूमता हुआ वह विना पूर्वसूचना के सुमुख गाथापति के घर के पास में आया।

१०. उसको अकल्पित अपने घर में आते हुए देखकर सुमुख गाथापति प्रसन्न होकर उसके सम्मुख गया।

११. उसको विधिपूर्वक वंदन कर उसने निवेदन किया—आज मेरा दिन धन्य है जो तुम्हारे दर्शन हुए हैं।

कुणेज्जा पावणं गेहं, भिक्खं गेण्हेज्ज संपयं।
मुणीणं दंसणं होइ, सुदइवं[5] विणा णहि ।।१२।।

सोऊण पत्थणं तस्स, सुद्धहिअयणिग्गयं।
रिअेइ[6] सो गिहे तस्स, भिक्खं गहिउमाणसो ।।१३।।

सुमुहो सुद्धवत्थुं य, विसुद्धभावणाहि य।
से सुद्धसाहुणो देइ, पफुल्लहियएण हु ।।१४।।

पंचदिव्वं[7] समुब्भूअं, तम्मि कालम्मि से गिहे।
दट्ठूण मणुया इत्थं, वज्जरेंति[8] परोप्परं ।।१५।।

धण्णो गाहावई इण्हिं, इमो सुमुहणामगो।
दाही मुणीण दाणं जो, दुल्लहं जं य विज्जए ।।१६।।

सामाइयाइकिच्चं य, कुणेउं सावगा पहू।
परं सुपत्तदाणं य, ण संजोगं विणा इह ।।१७।।

सुद्धं वत्थुं जया होइ, सुद्धो हुवेइ दायगो।
दाणस्स भावणा होइ, पत्तदाणं लहेइ य ।।१८।।

दाऊण तस्स दाणं य, विसुद्धभावणाहि हु।
बद्धं णराउयं तेण, पत्तदाणं महाफलं ।।१९।।

बहुवाससयाइं सो, पालेऊण णराउयं।
लद्धूण समये मच्चुं, उप्पन्नो णयरे इह ।।२०।।

रायअदीणसत्तुस्स, राणीअ गब्भओ इमो।
'सुबाहु' त्ति तया णामो, दिण्णो य पिअरेहि से ।।२१।। (जुग्गं)

सुमुहस्स अयं जीवो, सुबाहुकुमरो य हु।
दाऊण मुणिणो दाणं, लहीअ संपयं[9] इमं ।।२२।।

---

५. सुभाग्यम् (एच्च दैवे-प्रा. व्या. ८।१।१५३)। ६. प्रविशति (प्रविशेरिअः-प्रा. व्या. ४।४।१८३)। ७. पंच दिव्य—(१) सुवर्ण वृष्टि (२) पांच वर्णों के फूलों की वर्षा (३) वस्त्रों का उत्क्षेप (४) देव दुंदुभियों का आहत होना (५) आकाश में 'अहोदानं, अहोदानं' ऐसी उद्घोषणा होना। ८. कथयन्ति (कथेर्वज्जर......प्रा. व्या. ४।४।२)। ९. संपदाम्।

१२. मेरे घर को पावन करें और भिक्षा ग्रहण करें। विना सद्भाग्य के साधुओं के दर्शन नहीं होते हैं।

१३. उसके शुद्ध हृदय से निकली हुई प्रार्थना को सुनकर सुदत्त मुनि उसके घर भिक्षा के लिए प्रविष्ट हुए।

१४. सुमुख ने प्रसन्नचित्त से उस शुद्ध मुनि को शुद्ध वस्तु का शुद्ध भावना से दान दिया।

१५. उस समय उसके घर में पांच दिव्य प्रकट हुए। उनको देखकर मनुष्य परस्पर में इस प्रकार बोलने लगे—

१६. यह सुमुख गाथापति धन्य है जिसने मुनि को दुर्लभ दान दिया है।

१७. श्रावक सामायिक आदि कृत्य करने में समर्थ हैं किंतु सुपात्रदान विना संयोग के प्राप्त नहीं होता।

१८. जब वस्तु शुद्ध हो, देने वाला शुद्ध हो तथा देने की भावना हो तब पात्र दान प्राप्त होता है।

१९. विशुद्ध भावों से उसको [मुनि को] दान देकर उसने मनुष्यायु का बंधन किया। क्योंकि पात्रदान महान् फल देने वाला होता है।

२०-२१. वह बहुत वर्षों तक मनुष्यायु का पालन कर, मृत्यु को प्राप्त कर इस नगर में राजा अदीनशत्रु की रानी के गर्भ से उत्पन्न हुआ है। माता-पिता ने इसका नाम सुबाहुकुमार दिया।

२२. यह सुबाहुकुमार सुमुख गाथापति का जीव है। मुनि को दान देकर इसने इस संपदा को प्राप्त किया है।

जहा उव्वरभूमीए, खित्तं बीयं मुहा णहि ।
दिण्णं सुपत्तदाणं वि, होइ तहा मुहा णहि ।।२३।।

सुणिआण भवं पुव्वं, सुबाहुकुमरस्स से ।
पुच्छेइ गोयमो वीरं, इत्थं पुणो तयाणि य ।।२४।।

अयं भवाण अब्भासे, पव्वज्जं गेण्हिहेइ किं ।
'आम'[10] त्ति कहिऊणं य, वीरो पच्चुत्तरेइ तं ।।२५।।

भत्ता पइदिणं णेंति, लाहं पवयणस्स से ।
गिहागयाअ गंगाअ, ण्हाउं महेइ[11] को णहि ।।२६।।

ठाऊण किंचि कालं य, वीरो वच्चइ अण्णह[12] ।
ठान्ति एगम्मि ठाणम्मि, बीयं विणा ण साहुणो ।।२७।।

विओगो दुस्सहो होइ, सद्धालूण तयाणि य ।
साहेंति[13] दंसणं देज्जा, पुणो वि भगवं इह ।।२८।।

सद्धा धम्मम्मि रक्खेज्जा, समायरेज्ज तं सया ।
धम्मो णराण ताणं हु, अण्णो लोगम्मि को वि णो ।।२९।।

इत्थं धम्मोवएसं य, दाऊण भत्तमाणवा ।
वीरो अण्णत्थ वच्चेइ, णिव्बीयभत्तवच्छलो ।।३०।।(जुग्गं)

इइ बीओ पव्वो

---

१०. आम अभ्युपगमे—प्रा. व्या. ८।२।१७७) । ११. कांक्षति (कांक्षेराह····प्रा. व्या. ८।४।१९२) । १२. अन्यत्र (त्रपो हि-ह-त्थाः—प्रा. व्या. ८।२।१६१) । १३. कथयन्ति ।

२३. जिस प्रकार उर्वर भूमि में क्षिप्त बीज व्यर्थ नहीं होता उसी प्रकार दिया हुआ पात्रदान भी निष्फल नहीं होता।

२४. सुबाहुकुमार के पूर्वभव को सुनकर गौतम स्वामी ने पुनः भगवान् महावीर को इस प्रकार पूछा—

२५. क्या यह आपके समीप में दीक्षा ग्रहण करेगा। भगवान् ने प्रत्युत्तर में कहा—हां।

२६. भक्त लोग भगवान् के प्रवचन का प्रतिदिन लाभ लेते हैं। घर में आई हुई गंगा में कौन स्नान करना नहीं चाहता?

२७. कुछ दिन ठहर कर भगवान् अन्यत्र चले गये। क्योंकि मुनि गण विना कारण एक स्थान में नहीं रहते हैं।

२८. श्रद्धालुओं के लिए उनका विरह दुस्सह हो गया। उन्होंने भगवान् को कहा—यहां हमें पुनः दर्शन दीजिएगा।

२९-३०. तुम लोग धर्म में श्रद्धा रखना। उसका सदा आचरण करना। धर्म ही मनुष्य का प्राण है। संसार में अन्य कोई भी त्राण नहीं है। इस प्रकार भक्त जनों को धर्मोपदेश देकर भगवान् अन्यत्र चले गये। वे भक्तों के प्रति निष्कारण वत्सल थे।

द्वितीय सर्ग समाप्त

तइओ सग्गो

जाणेइ[1] णो को वि कयाइ हुवेज्जा, मच्चाण जीअम्मि परिवत्तणं य ।
दुट्ठा अदुट्ठा सुयणा य दुट्ठा, हा ! होंति भावाण वसं गया य ।।१।।

घेत्तूण धम्मं य गिहत्थरूवं, पालेइ चित्तेण तया सुबाहू ।
कुव्वेइ अप्पं य बलाणुरूवं, सो पोसहाइं य कयं[2] तयाणिं ।।२।।

सो एगया अट्ठमभत्तगं य, घेत्तूण कुव्वेइ हु पोसहं य ।
मज्झाअ रत्तीअ य तस्स चित्ते, भावा इमे जागरिया सुहा य ।।३।।

धण्णो स गामो निगमो इयाणिं, सक्खं य वीरो विहरेइ जत्थ ।
धण्णा मणुस्सा सयला य ते जे, सेव्वंति तं से य सुणेंति वाणिं ।।४।।

आवच्चेज्ज सो चे[3] भगवं दयालू, गामाणुगामा जइ अत्थ इण्हि ।
तेसिं समीवे अहयं तयाणिं, गेण्हेज्ज दिक्खं दुहणासिणिं य ।।५।।

सुद्धेण चित्तेण कया य भावा, णाइं मुहा होइ णराण लोगे ।
सागाररूवा पुरिमं य पच्छा, ते होंति णूणं पिसुणेंति विण्णा[4] ।।६।।

भावा कुमारस्स वियाणिऊण, णाणेण वीरो जगतारगो य ।
तं तारिउं सो य तहिं तयाणिं, सीसेहि सद्धिं य समागमेइ ।।७।।

णाऊण वीरस्स समागइं भो !, भत्ता तयाणिं य पमोयचित्ता ।
तेसिं कुणेउं सुहदंसणं ते, हंपुव्विअं तत्थ समागमेंति ।।८।।

सोऊण वीरस्स समागइं सो, भूवस्स पुत्तो कुमरो सुबाहू ।
वच्चेइ लद्धूण मुयं स-चित्ते, काउं य तेसिं सुहदंसणं य ।।९।।

दट्ठूण मेहं जह[5] चायगाण, मोएइ चित्तं भुवणम्मि अत्थ ।
लद्धूण दंसं पहुणो तहेव, मोएइ भत्ताण मणो तयाणिं ।।१०।।

---

१. छंद—इन्द्रवज्रा । २. कार्यम् । ३. आव्रजेत् । ४. विज्ञाः । ५. यथा (वाऽव्ययोत्खातादावदातः प्रा. व्या. ८।१।६७ इति सूत्रेण जह, जहा द्वौ **भवतः**) ।

तृतीय सर्ग

१ मनुष्य के जीवन में कब परिवर्तन हो जायें—यह कोई भी नहीं जानता है। भावों के वशीभूत होकर दुष्ट भी सज्जन हो जाते हैं और सज्जन भी दुष्ट हो जाते हैं।

२. अगारधर्म को ग्रहण कर सुबाहुकुमार मन से उसका पालन करता है। वह अपनी शक्ति के अनुरूप पौषध आदि कार्य करता है।

३. एक बार उसने अष्टम भक्त (तीन दिन का उपवास) तप ग्रहण कर पौषध किया। मध्यरात्रि में उसके मन में ये शुभ भाव जागृत हुए—

४. वह ग्राम और नगर अभी धन्य है जहां भगवान् महावीर साक्षात् विहरण करते हैं। वे सभी मनुष्य धन्य हैं जो उनकी सेवा करते हैं और वाणी सुनते हैं।

५. वे कृपालु भगवान् यदि ग्रामानुग्राम से अभी यहां आ जाये तो मैं उनके पास में दुःखनाशक दीक्षा ग्रहण कर लूं।

६. शुद्ध मन से किए हुए भाव कभी निष्फल नहीं होते। वे पहले या पीछे निश्चित ही साकार होते हैं—ऐसा ज्ञानियों ने कहा है।

७. अपने ज्ञानबल से सुबाहुकुमार के भावों को जानकर जगतारक भगवान् महावीर उसको तारने के लिए शिष्यों सहित वहां आये।

८. भगवान् के आगमन को जानकर भक्तजन प्रसन्नचित्त हो उनके दर्शन करने के लिए अहंपूर्विका जाते हैं।

९. भगवान् के आगमन को सुनकर राजपुत्र सुबाहुकुमार के मन में प्रसन्नता हुई। वह उनके दर्शन के लिए गया।

१०. जिस प्रकार मेघ को देखकर चातकों का मन संसार में प्रसन्न होता है उसी प्रकार प्रभु के दर्शन पाकर भक्तों का मन प्रसन्न हुआ।

णाइं सुभग्गं य विणा य लोगे, साहूण दंसं य हुवेइ णूणं ।
साहूण दंसं पिसुणेंति विण्णा, लोगम्मि कल्लाणगरं य णिच्चं ।।११।।

धम्मोवएसं भगवं तयाणिं, मच्चा सुणावेइ समागया य ।
सोऊण तेसिं वयणं सुबाहू, इत्थं तयाणिं य णिवेयए से ।।१२।।

णेऊण आणं पियराण इण्हि, वम्फेमि[6] दिक्खं य भवाण पासे ।
सोऊण से णं कहणं य वीरो, साहेइ माइं[7] कुण तं विलंबं ।।१३।।

वच्चेइ सिग्घं स-गिहं सुबाहू, बोल्लेइ मायापियरं य इत्थं ।
वीरस्स वाणिं य विरागपुण्णं, सोऊण हं पव्वइउं महेमि ।।१४।।

दिक्खाअ आणं तुरिअं य देज्जा, माइं विलंबं अहुणा कुणेज्जा ।
सोऊण इत्थं वयणं तया से, साहेइ माया इर सोयमाणी ।।१५।।

अम्हे य एगो य तुमं य पुत्तो, इट्ठो य कंतो य पियो मणुण्णो ।
थेज्जो[8] मणामो रयणो इयाणिं, वेसासिओ[9] भंडकरंडतुल्लो ।।१६।।

तुज्झं वियोगं सहिउं समत्था, णाइं[10] वयं किंचि वि अत्थ पुत्त! ।
मच्चुस्स पच्छा य अओ य अम्हं, काऊण वुड्ढिं णिअगे कुलं तं ।।१७।।

गेण्हेज्ज दिक्खं पहुणो समीवे, णाइं य बाहा इर का वि अम्हं ।
सोऊण मायाअ इमं य वाणिं, साहेइ इत्थं कुमरो सुबाहू ।।१८।।
(तीहिं विसेसगं)

अंगं अणिच्चं मणुयाण लोगे, लद्धुं विणासं य कयाइ सक्कं ।
मच्चुं गमिस्सेइ य को मणुस्सो, पुव्वं य पच्छा अण को मुणेइ ।।१९।।

णाऊण जीअस्स अणियत्तणं णं, दिक्खाअ आणं तुरिअं य देज्जा ।
सोऊण से णं वयणं सवित्ती, साहेइ इत्थं य पुणो सुबाहुं ।।२०।।

जं अज्जियं अज्जयपज्जएण, वित्तं य भुंजेज्ज समं तुमं तं ।
पच्छा य मुंडो हविऊण दिक्खं, गेण्हेज्ज णूणं विहुणो समीवे ।।२१।।

---

६. कांक्षामि। ७. माइं मार्थे (प्रा. व्या. ८।२।१९१)। ८. स्थैर्यः।
९. वैश्वासिकः। १०. अण णाइं नञर्थे (प्रा. व्या. ८।२।१९०)।

११. सद्भाग्य के विना संसार में साधुओं के दर्शन नहीं होते । विज्ञजनों ने साधुओं के दर्शन को कल्याणकारक कहा है ।

१२. भगवान् ने तब समागत मनुष्यों को धर्मोपदेश सुनाया । उनके वचन को सुनकर सुबाहुकुमार ने इस प्रकार निवेदन किया—

१३. मैं माता-पिता की आज्ञा लेकर आपके पास दीक्षा ग्रहण करना चाहता हूं । उसके इस कथन को सुनकर भगवान् ने कहा—तुम विलंब मत करो ।

१४. सुबाहुकुमार शीघ्र अपने घर गया और माता-पिता को इस प्रकार बोला—भगवान् की वैराग्यमय वाणी को सुनकर मैं प्रव्रजित होना चाहता हूं ।

१५. आप शीघ्र दीक्षा की आज्ञा दें, विलम्ब न करें । उसके इस वचन को सुनकर माता शोक करती हुई बोली—

१६. तुम हमारे एक ही पुत्र हो । तुम इष्ट, कांत, प्रिय, मनोज्ञ, स्थैर्य, मनाम, रत्नतुल्य, वैश्वासिक और भंडकरंडग समान हो ।

१७-१८. पुत्र ! हम तुम्हारे वियोग को सहन करने में किंचित् भी समर्थ नहीं हैं । अतः तुम हमारी मृत्यु के पश्चात् अपने कुल में वृद्धि करके भगवान् के पास दीक्षा ग्रहण करना । हमें कोई भी बाधा नहीं है । माता की इस वाणी को सुनकर सुबाहुकुमार ने इस प्रकार कहा—

१९. संसार में मनुष्य का शरीर अनित्य है । वह कभी विनाश को प्राप्त हो सकता है । कौन मनुष्य पहले या बाद में मृत्यु को प्राप्त करेगा, कोई नहीं जानता ।

२०. जीवन की इस अनित्यता को जानकर मुझे शीघ्र दीक्षा की आज्ञा दें । उसके इस वचन को सुनकर माता ने सुबाहुकुमार को पुनः इस प्रकार कहा—

२१. दादा, परदादा ने जो धन अर्जित किया है उस समस्त धन को तुम भोगो । तत्पश्चात् मुंडित होकर भगवान् के समीप में दीक्षा ग्रहण करो ।

सोच्चाण मायाअ इमं य वाणिं, साहेइ इत्थं कुमरो सुबाहू ।
वित्तं विणासं लहिउं समत्थं, राया य थेणो हरिउं समत्थो ।।२२।।

अग्गी हिरण्णं डहिउं समत्था, णेउं समत्था इर दायगा तं ।
दट्ठूण वित्तस्स इमं ठिइं मे, दिक्खाअ आणं तुरिअं य देज्जा ।।२३।।
(जुग्गं)

वाणिं सुबाहुस्स इमं सुणेत्ता, बोल्लेइ माया हु पुणो वि इत्थं ।
साहूण जीअं सुयरं य णाइं, तं विज्जए दुक्करदुक्करं य ।।२४।।

उद्देसियं कीयगडं य साहू, गेण्हेंति आहाकयभोयणं णो ।
आयारमेयं समणाणमत्थि, लोगम्मि जं अत्थि य दुक्करं य ।।२५।।

बावीससंखाणि परीसहाइं, साहूण जीअम्मि समागमेंति ।
धीरा सुवीरा सहिउं समत्था, णाइं य अण्णो पुरिसो समत्थो ।।२६।।

ताइं तुमं णो सहिउं समत्थो, माइं य गेण्हेज्ज अओ य दिक्खं ।
सोऊण माऊअ इमं य वाणिं, साहेइ इत्थं कुमरो सुबाहू ।।२७।।

सामण्णमेयं सइ[11] कायराणं, किच्चं महादुक्करमत्थि अत्थ ।
किं दुक्करं णिच्छियमाणसाणं, कज्जं य लोगम्मि य विज्जए य ।।२८।।

णाऊण दिक्खाअ य से वियारं, भज्जाउ सव्वाउ तयाणि तस्स ।
तं बुज्झिउं दुत्ति कुणेंति चेट्ठं, बोल्लेंति इत्थं णिअगं पियं ते ।।२९।।

आहारभूयो य जहा य लोगे, मेहो सया होइ य चायगाणं ।
आहारभूयो य तुमं इयाणिं, अम्हाण सव्वाण तहेव अत्थि ।।३०।।

णीरं विणा जा य दसा हुवेइ, मीणाण लोगम्मि तहेव सा णे[12] ।
छड्डेज्ज[13] माइं य अओ पियो ! तुं, सोऊण इत्थं वयणं य ताणं ।।३१।।

साहेइ ता सो कुमरो सुबाहू, आहारभूयो इह को य कस्स ।
मच्चा समे सत्थपरायणा य, सत्थं विणा पुच्छइ को ण कं य ।।३२।।
(जुग्गं)

११. सदा (इः सदादौ वा— प्रा. व्या. ८।१।७२) । १२. अस्माकम् ।
१३. त्यजेत् (मुचेश्छड्डा.......प्रा. व्या. ८।४।९१) ।

२२-२३. माता की इस वाणी को सुनकर सुबाहुकुमार ने इस प्रकार कहा—धन विनाश को प्राप्त हो सकता है। राजा और चोर उसका हरण कर सकते हैं। अग्नि धन को जला सकती है। दायक उसे ले सकते हैं। धन की इस स्थिति को देखकर तुम मुझे दीक्षा की शीघ्र आज्ञा दो।

२४. सुबाहुकुमार की इस वाणी को सुनकर माता ने पुनः इस प्रकार कहा—साधु-जीवन सरल नहीं है। वह दुष्कर-दुष्कर है।

२५. साधु औद्देसिक, क्रीतकृत, आधाकर्म भोजन को ग्रहण नहीं करते हैं। यह श्रमणों का आचार है, जो संसार में दुष्कर है।

२६. साधु के जीवन में बावीस परीषह आते हैं। धीर, वीर ही उसे सहन करने में समर्थ हैं, अन्य कोई नहीं।

२७. तुम उन्हें सहन करने में समर्थ नहीं हो, अतः दीक्षा ग्रहण मत करो। माता की इस वाणी को सुनकर सुबाहुकुमार इस प्रकार बोला—

२८. यह श्रामण्य कायरों के लिए महादुष्कर कार्य है। निश्चित मन वालों के लिए संसार में क्या दुष्कर है?

२९. उसके दीक्षा-ग्रहण के विचार को जानकर उसकी सब पत्नियां उसको समझाने के लिए शीघ्र चेष्टा करती हैं। वे अपने प्रिय को इस प्रकार कहती हैं—

३०. जैसे संसार में चातकों का आधार मेघ है उसी प्रकार अभी तुम हम सबके आधारभूत हो।

३१-३२. जल के बिना मछलियों की जो दशा होती है वही दशा तुम्हारे बिना हमारी होगी। अतः हे प्रिय! तुम हमें मत छोड़ो। उनके इस प्रकार के वचन को सुनकर सुबाहुकुमार ने उनको कहा—इस संसार में कौन किसका आधारभूत है? सभी मनुष्य स्वार्थपरायण हैं। स्वार्थ के बिना कोई किसी को नहीं पूछता है।

लद्धूण जम्मं मणुयाण जो णा[१४], भोगम्मि णिच्चं रमणं कुणेइ ।
धण्णो स णाइं इहइं[१५] मणुस्सो, धण्णो स जो चाअपहे गमेइ ॥३३॥

वम्फेमि हं संजमजीविअं य, गेण्हेज्ज भे संजमजीवणं य ।
कंता सुकंता य हुवेइ सा य, णिच्चं पियं जा अणुजाइ अत्थ ॥३४॥

सोऊण से वयणं इणं ता, साहेंति इण्हि बलवं य तुं सि ।
अण्णं वयं आयरिउं य सक्का, चाअस्स मग्गे गमिउं ण पक्का[१६] ॥३५॥

गेण्हेज्ज तुं संजमजीवणं भो !, आणा य अम्हं सयलाण अत्थि ।
णेऊण आणं पमयाण ताणं, आओ सुबाहू पियराण पासे ॥३६॥

कुव्वेइ दिक्खाअ महूसवं से, उच्छाहपुव्वं णिवई तयाणिं ।
पच्छा सपुत्तो भगवस्स पासे, आगम्म इत्थं पिसुणेइ सो य ॥३७॥

भंते ! इमो अम्ह पियो य पुत्तो, संसारदावाणलदड्ढचित्तो ।
अम्हे य सव्वे चइऊण इण्हि, पासे भवाणं य महेइ दिक्खं ॥३८॥

वम्फेइ सो संजमरूवरज्जं, णाइं य मज्झं य इणं य रज्जं ।
कंखेइ सो मुत्ति-थियं य लद्धुं, वांछेइ णाइं अवरा य कंता ॥३९॥

दाऊण दिक्खं सहलीकुणेज्जा, से भावणा मे त्ति णिवेयणं य ।
सोऊण रायस्स वयं य वीरो, दिक्खं सुबाहुं य तया पदेइ ॥४०॥

दाऊण दिक्खं भगवं सुबाहुं, सिक्खं सुकंतं इमं य देइ ।
चिट्ठेज्ज आसेज्ज गमेज्ज णिच्चं, खाएज्ज भासेज्ज जएण तुं य ॥४१॥

दट्ठूण दिक्खं सयला मणुस्सा, चाअस्स काऊण पसंसणं य ।
भत्तीअ किच्चा णमणं सुबाहुं, अप्पं य गेहं य गया तयाणिं ॥४२॥

साहू सुबाहू समणाण पासे, सिक्खेइ अंगाइ विणएण सद्धिं ।
होऊण दंतो य पसंतचित्तो, पालेइ सो सुद्धमएहि[१७] दिक्खं ॥४३॥

काऊण संलेहणमंतकाले, आलोयणाइं स कुणेइ पच्छा ।
होऊण सुद्धो लहिऊण मच्चुं, सोहम्मकप्पम्मि सुरो य जाओ ॥४४॥

१४. मनुष्यः । १५. इदानीम् (इहइं संपइ इण्हि, इत्ताहे संपयं दाणि—पाइयलच्छीनाममाला ११४) । १६. समर्थाः । १७. भावैः ।

३३. मनुष्य-जन्म को प्राप्त कर जो व्यक्ति सदा भोगों में रमण करता है वह धन्य नहीं है। धन्य वह है जो त्यागपथ पर चलता है।

३४. मैं संयम-जीवन चाहता हूं। तुम लोग भी संयम-जीवन को ग्रहण करो। वही स्त्री सुस्त्री है जो सदा पति का अनुगमन करती है।

३५. उसके इस वचन को सुनकर उन्होंने कहा—तुम अभी शक्तिशाली हो। हम अन्य व्रत का आचरण कर सकती हैं किन्तु त्याग-मार्ग (संयम-मार्ग) पर जाने में समर्थ नहीं हैं।

३६. तुम संयम-जीवन को स्वीकार करो। हम सबकी आज्ञा है। पत्नियों की आज्ञा लेकर सुबाहुकुमार माता-पिता के समीप आया।

३७. राजा ने उसका दीक्षा-महोत्सव उत्साहपूर्वक किया। तत्पश्चात् वह पुत्र-सहित भगवान् के पास आकर इस प्रकार बोला—

३८. भंते ! मेरा यह प्रिय पुत्र है। इसका हृदय संसाररूपी दावाग्नि से दग्ध है।

४९. वह संयमरूपी राज्य को चाहता है, मेरे इस राज्य को नहीं। वह मुक्ति-स्त्री की वांछा करता है, अन्य स्त्रियों की नहीं।

४०. दीक्षा देकर उसकी भावना को सफल करें, यह मेरा निवेदन है। राजा के वचन को सुनकर भगवान् महावीर ने सुबाहुकुमार को दीक्षा प्रदान की।

४१. प्रव्रज्या प्रदान कर भगवान् ने सुबाहुकुमार को यह सुन्दर शिक्षा दी—तुम यत्नपूर्वक ठहरो, बैठो, चलो, खाओ और बोलो।

४२. दीक्षा देखकर सभी मनुष्य त्याग की प्रशंसा कर और सुबाहुकुमार को भक्तिपूर्वक नमस्कार करके अपने घर चले गये।

४३. मुनि सुबाहुकुमार साधुओं के समीप बारह अंगों का अध्ययन करता है। वह दांत और शांत-चित्त होकर शुद्ध भावों से प्रव्रज्या का पालन करता है।

४४. अन्तिम समय में संलेखना कर उसने आलोचना की और शुद्ध होकर, मृत्यु का वरण कर वह सौधर्मकल्प में देव हुआ।

सो देवलोगाउ तओ चइत्ता, माणुस्सजम्मं य पुणो लहेहिइ ।
इत्थं य एगं य भवं णरस्स, एगं य भवं काहिइ देवलोगे ।।४५।।

अज्जं स कप्पम्मि सणंकुमारे, बीअं भवं काहिइ माणुसस्स ।
तच्चं भवं बम्हदेवलोगे, चोत्थं भवं काहिइ माणुसस्स ।।४६।।

सो पंचमं भो ! महासुक्ककप्पे, छट्ठं भवं काहिइ माणुसस्स ।
सो सत्तमं आणअकप्पवासे, सो अट्ठमं माणुसजीवियम्मि ।।४७।।

अप्पं[18] भवं आरणकप्पवासे, काऊण इण्हि णवमं पुणो सो ।
माणुस्सलोगे दसमं भवं सो, एगारसं काहिइ अप्पणो य ।।४८।।

सव्वट्ठसिद्धम्मि भवं कुणेत्ता, जम्मं लहिस्सेइ विदेहखेत्ते ।
साहूण संगं लहिऊण तत्थ, धम्मं सुणिस्सेइ तयाणि सो य ।।४९।।
(जुग्गं)

वेरग्गभावं लहिऊण चित्ते, दिक्खं गहिस्सेइ य सो य पच्छा ।
काऊण कम्माण विणासणं हु, मुत्तिं लहिस्सेइ तयाणि दुत्ति ।।५०।।

इइ तइओ सग्गो समत्तो

इइ विमलमुणिणा विरइयं पज्जप्पबंधं सुबाहुचरियं समत्तं

---

१८. आत्मानम् ।

४५. देवलोक से च्यवन कर वह पुनः मनुष्य-जन्म प्राप्त करेगा। इस प्रकार एक भव मनुष्य का और एक भव देवलोक में करेगा।

४६. वह प्रथम भव सनत्कुमारकल्प में और दूसरा भव मनुष्य का करेगा। तीसरा भव ब्रह्म देवलोक में और चौथा भव मनुष्य का करेगा।

४७. वह पांचवां भव महाशुक्ल कल्प में और छट्ठा भव मनुष्य का करेगा। सातवां भव आनतकल्पवास में और आठवां भव मनुष्य का करेगा।

४८-४९. नवमां भव आरण कल्प में और दसवां भव मनुष्य का करेगा। ग्यारहवां भव सर्वार्थसिद्ध में करके महाविदेह क्षेत्र में जन्म लेगा। साधुओं की संगति पाकर तब वह वहां धर्म सुनेगा।

५०. मन में वैराग्यभाव को पाकर वह दीक्षा ग्रहण करेगा। तत्पश्चात् कर्मों का नाश करके वह मुक्ति को प्राप्त करेगा।

तृतीय सर्ग समाप्त

विमलमुनिविरचित पद्यप्रबन्धसुबाहुचरित्र समाप्त

पसत्थो

आयाररूवे[1] य वियाररूवे, एगत्तरूवेण सया समेसु ।
जस्सत्थि णामो भुवणे पसिद्धो, तेरापहो होज्ज स वड्ढमाणो ।।१।।

आणा गुरूणं पमुहा य जत्थ, सीसं णिअं णो मुणिणो कुणंति ।
जत्थत्थि णाइं य पयस्स दंदो, तेरापहो होज्ज स वड्ढमाणो ।।२।।

जस्सि हु सेवा विणयो वरो य, आयारहीणस्स ण किं वि ठाणं ।
जस्सत्थि भिक्खू पवत्तगो य, तेरापहो होज्ज स वड्ढमाणो ।।३।।

जत्थट्ठ होज्जा गणिणो पगब्भा[2], जस्सत्थि दाणि णवमो गणिंदो ।
रामंतिमो भो तुलसी सुदक्खो, तेरापहो होज्ज स वड्ढमाणो ।।४।।

जेसिं य काले पगइं पयायो, तेरापहो सव्वदिसासु चेव ।
संघेण दिण्णं य जुगप्पहाणं, जेसिं पयं सो तुलसी चिरायू ।।५।।

णाऊण सीसं णथमल्लणामं, पण्णं विणम्मं य सुसीलजुत्तं ।
तस्सप्पिअं अप्पणयं पयं य, सम्माणपुण्णं जणसम्मुहम्मि ।।६।।

काऊण णामे परिवट्टणं से, दाही महापण्णमिणं जहत्थं ।
आणाअ तेसिं पगइं कुणंतो, तेरापहो होज्ज स वड्ढमाणो ।।७।।
(जुग्गं)

णव्वाणि कज्जाणि कुणीअ संघे, तेसुं य एगं पयछड्डणं य ।
जं पेरणं दाहिइ माणवा हु, अंस्सि जुगे भो ! पयपीलिया य ।।८।।

काउं गणीसं य महाइपण्णं, संघस्स भारं णिअविज्जमाणे ।
दाऊण होहीअ य भारमुक्को, सो मज्झ[3] चित्ते तुलसी वसेज्जा ।।९।।

दाऊण दिक्खं मणुया अणेगे, तेसिं विगासो विहियो य जेण ।
तेसुं य एगो अहयं वि अत्थि, जाणेज्ज सव्वे विमलो त्ति मम्ह ।।१०।।

---

१. छंद-इंद्रवज्रा । २. प्रतिभान्वित: (प्रगल्भ: प्रतिभान्वित:-अभिधान-चिंतामणि-३।१।७) । ३. माम् ।

प्रशस्ति

१. आचार में, विचार में तथा एकता में जिसका नाम संसार में प्रसिद्ध है, वह तेरापंथ धर्मसंघ वर्धमान हो।

२. जिसमें गुरु आज्ञा ही प्रधान है, मुनिगण अपना शिष्य नहीं करते और जहां पद का द्वन्द्व नहीं है वह तेरापंथ धर्मसंघ वर्धमान हो।

३. जिसमें सेवा और विनय ही प्रधान है, आचारहीन को कोई स्थान नहीं है और जिसके प्रवर्तक भिक्षु स्वामी (आचार्य भिक्षु) हैं वह तेरापंथ धर्मसंघ वर्धमान हो।

४. जिसमें आठ प्रतिभावान् आचार्य हो चुके हैं और नवमें सुदक्ष आचार्य श्री तुलसी हैं, वह तेरापंथ धर्मसंघ वर्धमान हो।

५. जिनके शासन काल में तेरापंथ संघ ने सब प्रकार से प्रगति की और संघ ने जिन्हें युगप्रधान पद दिया वे आचार्य श्री तुलसी चिरायु हों।

६-७. जिन्होंने शिष्य मुनि नथमल जी को प्राज्ञ, विनम्र और आचार संपन्न जानकर जनता के सम्मुख उन्हें अपना सम्मानपूर्वक पद दिया तथा उनके नाम को बदलकर 'युवाचार्य महाप्रज्ञ' यह यथार्थ नाम रखा। उन तुलसी गणी की आज्ञा में विकास करता हुआ तेरापंथ धर्मसंघ वर्धमान हो।

८. उन्होंने संघ में नये-नये कार्य किये हैं जिनमें एक है—पद का विसर्जन। जो इस युग में पद-पीडितों को निश्चित प्रेरणा देगा।

९. अपनी विद्यमानता में युवाचार्य महाप्रज्ञ को आचार्य बनाकर और गण का भार देकर जो भारमुक्त हो गये हैं वे तुलसी मेरे हृदय में बसे रहें।

१०. उन्होंने अनेक व्यक्तियों को दीक्षित कर उनका विकास किया उनमें एक मैं भी हूं। सब मुझे 'विमल' नाम से जानें।

दाऊण दिक्खं किर रक्खिओ हं, राजंतिमो भो ! दुलहस्स पासे ।
तेणं मए भो ! भरिआ गुणा य, मज्झं य जीअस्स कयो विगासो ।।११

मोयं वसंतेण मए य तत्थ, साणिज्झमत्तं[४] मुणिणो णथस्स ।
जो अत्थि पण्णो य विसारयो य, विस्सासपत्तं गुरुणो य पुज्जो ।।१२

तेसिं य दोण्हं उवयारमत्थि, मज्झं य उब्भं[५] अण संसओ को ।
णेहं य सिक्खं णिअगं य दाउं, पंथो पसत्थो मह बालगस्स ।।१३।।

पासे वसंतेण मए य तेसिं, साणिज्झमत्तं गुरुणो किवा य ।
भग्गं विणा को वि ण अत्थि सक्को, वासं य लद्धुं गुरुणो कुलस्स १४

जं किं मए भो ! विहियो विगासो, णो तत्थ मे का वि य अत्थि सत्ती ।
सव्वो गुरूणं य किवाअ जाओ, मूओ वि वत्तुं हुविउं य सक्को ।।१५

लद्धुं[६] गुरूणं पउरं किवं भो !, चित्तं य मज्झं किर गग्गरं[७] य ।
लद्धूण तेसिं इर पेरणं मे, भासा इमा 'पाइय' सिक्खिआ य ।।१६।।

भासाअ ताए इर पाइआए, कव्वाइ दाणिं रइयाइ मे य ।
सव्वं गुरूणं य वलं य अत्थि, हं हेउमेत्तं अहुणा म्हि य ।।१७।।

विभिन्नकालम्मि विभिन्नगामे[८], कव्वाण णेसिं रयणा हुवीअ ।
सिक्खा विभिन्ना मणुया य देंति, लोए इमाओ रयणाउ णूणं ।।१८।।

मज्झं किईओ पढिऊण मच्चा, भासाअ णाए जइ सिक्खगा य ।
लाहं लहिस्संति जगम्मि किंचि, णूणं समो होहिइ मे फली य ।।१९।।
(जुग्गं)

इइ विमलमुणिणा विरइयो 'पाइयपडिबिंबो' समत्तो

---

४. प्राप्तम् । ५. ऊर्ध्वम् (वोर्ध्वे-प्रा. व्या. ८।२।५९) । ६. लब्ध्वा । ७. गद्गदम् (संख्यागद्गदे रः—प्रा. व्या. ८।१।२१९) । ८. इन रचनाओं का समय और किस स्थान पर ये पूर्ण हुई उसका विवरण इस प्रकार है—(१) ललियंगचरियं—वि. सं. २०३४ जोधपुर । (२) देवदत्ता—वि. सं. २०३६ चंदेरी नगरी (लाडनूं) (३) सुबाहुचरियं—वि. सं. २०३९ सरदारशहर ।

११. दीक्षा देकर उन्होंने मुझे मुनि श्री दुलहराज जी के पास रखा। उन मुनिराज ने मेरे में सद्संस्कार भरे और मेरे जीवन का विकास किया।

१२. वहां प्रसन्नतापूर्वक रहते हुए मुझे मुनि श्री नथमल जी (आचार्य महाप्रज्ञ) का सान्निध्य प्राप्त हुआ। जो प्राज्ञ, विशारद, पूज्य तथा गुरुदेव के विश्वासपात्र हैं।

१३. उन दोनों का मेरे ऊपर बहुत उपकार है। उन्होंने मुझे अपना स्नेह और शिक्षा देकर मेरा पथ प्रशस्त किया।

१४. उनके पास रहते हुए मुझे गुरुदेव का सान्निध्य तथा कृपा प्राप्त हुई। भाग्य विना कोई भी गुरुकुल-वास को प्राप्त नहीं कर सकता।

१५. मैंने जो कुछ भी विकास किया है उसमें मेरा कुछ भी सामर्थ्य नहीं है। सब गुरुदेव की कृपा से हुआ है, क्योंकि गुरु की कृपा से गूंगा भी बोल सकता है।

१६. गुरुदेव की कृपा पाकर मेरा मन गद्गद् है। उनकी प्रेरणा पाकर मैंने प्राकृत भाषा का अध्ययन किया।

१७ उस प्राकृत भाषा में मैंने काव्यों की रचना की है। यह सब गुरुदेव की शक्ति है। मैं निमित्तमात्र हूं।

१८-१९. इन काव्यों की रचना विभिन्न ग्रामों में, विभिन्न समय में हुई है। ये रचनायें मनुष्यों को विविध शिक्षाएं देती हैं। मेरी कृतियों को पढ़कर यदि इस भाषा (प्राकृत) के अध्येता कुछ लाभ प्राप्त करेंगे तो निश्चित ही मेरा श्रम सार्थक होगा।

परिसिट्ठ

कव्वागयसुत्तीओ
(काव्यागत सूक्तियां)

ललियंगचरियं

१. को ण करेइ सलाहं, दायारस्स मुत्तहत्थस्स ।१।४
२. णीया डहंति णिच्चं, परस्स सोऊण पसंसं य ।१।६
३. दाया णो संकुचेइ, कयाइ अमुल्लवत्थुदाणे ।१।११
४. विणीयो काउमरिहइ, संतं चंडकोवजुत्तमवि ।१।१५
५. सच्चवाई ण बीहेइ, कयाइ जहतच्चं लविउं य १।१७
६. कि काउं य सक्केइ, असाहीणो य पुहवीयले ।१।२२
७. णत्थि सो सणिद्धो जो, मित्ताकित्ति सुणिअ मोयए ।१।२८
८. उरालत्तणेण सया, वड्ढए लोअम्मि णराण लच्छी ।१।३२
९. चित्तं दाणस्स माहप्पं ।१।३५
१०. सो मूढो जो जाणिय, वि ण करेइ गयस्स चिइच्छं ।१।४२
११. स-सिद्धंताण रक्खट्ठं, किं ण कुणेइ माणवो ।२।१०
१२. सहावो जारिसो जस्स, चाओ तस्स य दुक्करो ।२।१५
१३. विज्जए सो वयंसो जो, कट्ठे मित्तं जहाइ णो ।२।१६
१४. किंचि णमेइ धम्मिट्ठो, अहम्मस्स ण सम्मुहे ।२।४४
१५. कम्मं जहा भो ! मणुयो कुणेइ,
    लोए तया तस्स फलं लहेइ ।३।१०
१६. भासेंति णाइं अहियं पबुद्धा, अप्पेसु सद्देसु बहुं कहेंति ३।१९
१७. होज्जा महप्पा सययं परेसिं,
    दुक्खं विणट्ठुं हिर तप्परा य ।३।२१
१८. धम्मस्स लोए मणुयाण णाइं,
    आराहणा होइ मुहा कयाइ ।३।२४
१९. चित्ते दयल्ला य महाणुभावा,
    णासेंति दुक्खं सययं परेसिं ।३।४०

२०. पुण्णोदएणं य दुहं ण किं किं,
वच्चेइ णासं भुवणे णराणं । ३।४३

२१. णिच्चं महप्पा मणसा खमेंति तं,
जाएइ जो तेहि खमं य माणवो । ४।२१

२२. णिच्चं सहावो कुडिलो दुहप्पयो ।४।२३

२३. किं किं महप्पाण किवाअ माणवा,
लद्धुं समत्था भुवणम्मि सासयं ।४।३४

२४. विज्जप्पहावेण भुवणम्मि माणवा,
पक्का य कज्जं करिउं य दुक्करं ।४।३५

२५. पालेंति दिण्णं वयणं महाणरा ।४।३६

२६. लद्धुं पियं जो ण हुवेइ माणवो,
चित्ते पसण्णो अण सो पियो जणो ।४।८०

२७. सारं सया माणवजीवियस्स णं,
चाअस्स मग्गम्मि होज्ज भो ! गई ।४।८२

२८. जुग्गं य लोगम्मि मयस्स किं वि णो,
मूढो मणुस्सो य कुणेइ त्ति विम्हयं ।४।८३

२९. जो जारिसो होइ य अत्थ तारिसा,
काउं पयत्तं य कुणेइ सो परा ।४।८४

देवदत्ता

३०. कयाइ विणा वियारं, अण किं वि बोल्लेंति महप्पा ।१।२०

३१. कालस्स अग्गं य परं य किंचि,
कस्सावि णाइं य बलं चलेइ ।२।५

३२. णेहं विणा को ण दुहं कुणेइ ।२।६

३३. हवंति णिद्देसयरा य भिच्चा ।२।९

३४. कज्जं ण किं किं अहमं कुणेइ,
कामाउरो हा ! हुविऊण मच्चो ।४।२१

३५. पावी य दंडेज्ज जगम्मि णिच्चं,
कायव्वमेअं पुढमं णिवस्स ।४।४८

३६. मच्चो जहा अत्थ कुणेइ कम्मं,
णूणं फलं सो य तहा लहेइ ४।५२

३७. कम्मं विणा णो य फलस्स लाहो ।४।६०

३८. कम्मं कडं णो मणुअं जहाइ,
लोअम्मि णूणं य विणा फलाइं ।४।६५

३९. कम्माणि कत्तू ण चयेंति लोगे ।४।६८

४०. विणीओ पक्कलो लद्धं, गुरुणो सविहे सुयं ।५।५

४१. विसमववहारेण, किं हवइ पिओ णरो ।५।१६

४२. रक्खगा बलिणो जस्स, को तं हंतुं य पच्चलो ।५।३३

सुबाहुचरियं

४३. मुणीण दंसणं होइ, सुदइवं विणा णहि २।१२

४४. पत्तदाणं महाफलं ।२।१९

४५. कंता सुकंता य हुवेइ सा य,
णिच्चं पियं जा अणुजाइ अत्थ ।३।३४

सद्दसूई
(शब्दसूची)

अड्ढं=आधा।
अण्णह=अन्यत्र।
अत्ता=सास।
अप्पणो=स्वयं।
अम्मो=आश्चर्य।
अल्लिवेइ=अर्पण करता है।
अइच्छीअ=गया।
अण=नहीं।
अवओडगबंधणं=रस्सी से गले और हाथ को मोड़कर पृष्ठ भाग के साथ बांधना।
अहमो=नीच।
आओ=आया।
आढत्तं=प्रारम्भ किया।
आम=स्वीकार करने के अर्थ में अव्यय।
इड्ढि=ऋद्धि को।
उप्पालेइ=बोलता है।
उरालत्तणं=उदारता।
उवयामो=विवाह।
ऊसुओ=उत्सुक।
कइवाह=कतिपय।
कयण्णुयं=कृतज्ञता को।
कामिअं=इच्छुक।
कित्तिमं=कृत्रिम।
कीणासणी=राक्षसिनी।
कीरिसो=कैसा।
घणदंडगं=लोहदंड।
चइउं=छोड़कर।
चवीअ=कहा।
चिइच्छं=चिकित्सा को।
चित्तं=आश्चर्य, मन।
छड्डेज्ज=छोड़ो।
जह=जहां।
जढलेण=उदर से।
जवेइ=बीताता है।
जाएइ=याचना करता है।
जायगो=याचक।
झंखेइ=विलाप करता है।
झत्ति=शीघ्र।
ठढत्तं=स्तब्धता।
डहंतो=जलता हुआ।
डिंगरो=दास।
ढुण्ढुल्लंतो=घूमता हुआ।
ढुण्ढुल्लमाणो=घूमता हुआ।

णाइं=नहीं।
णाउं=जानने के लिए।
णाऊण=जानकर।
णायं=स्वर्ग को।
णिअंतं=नितान्त।
णिअच्छिओ=देखा।
णिद्ध=मित्र।
णिस्साण=दरिद्रों का।
तवेइ=गरम करता है।
तुरिअं=शीघ्र।
थेज्जो=जिसमें स्थिरता का गुण हो।
दंगं=नगर।
दुत्ति=शीघ्र।
दुयं=शीघ्र।
धंतं=अन्धकार।
धीरं=धैर्य।
निगूहित्ता=छिपा कर।
पक्कलो=समर्थ।
पच्चाएसं=दृष्टान्त।
पम्हुसेइ=विस्मृत करता है।
पउरा=पुरवासी।
पण=शर्त।
पणामिओ=अर्पित किया।
पहा=प्रथा।
पडिसुयं=स्वीकार किया।
पडिसोच्छं=स्वीकार करूंगा।
परिअत्तणं=परिवर्तन।
परोप्परं=परस्पर।
पारकेरा=दूसरों की।
पुरिमं=पूर्व।
पीला=पीडा।
फिट्टंति=भ्रष्ट होते हैं।
बुज्झा=जानकर।
भिसेज्जा=चमको।
मएहि=भावों से।
ममाइ=मेरा।
महेइ=चाहता है।
माइं=मत।
मिच्चुं=मृत्यु को।
मेरा=मर्यादा, सीमा।
मोत्तुआण=छोड़कर।
मोत्तूण=छोड़कर।
राउलिया=राजपरिवार के लोग।
रिक्को=रिक्त।
रिअइ=प्रवेश करता है।
लूरेंति=काटते हैं।
वज्जरेइ=कहता है।
वम्फेइ=चाहता है।
वयंसो=मित्र।
वसुं=धन।
वायालो=वाचाल।
वारं=द्वार।
वारिज्जयं=विवाह।
विम्हरिऊण=याद करके।

विप्पयारं=तिरस्कार को।

विअणं=वेदना को।

विलया=स्त्री।

विरमालेइ=प्रतीक्षा करता है।

विसूरइ=खिन्न होता है।

विहीरेइ=प्रतीक्षा करता हैं।

वीवाहो=विवाह।

वुड्ढो=वृद्ध।

वेल्लेज्ज=रमण करें।

वेवेइ=कंपित करता है।

वेसासिओ=विश्वसनीय।

संथवो=परिचय।

संथुओ=परिचित।

सइ=सदा।

सइं=एक बार।

सज्झसं=भय।

सत्थं=स्वार्थ।

सतंतो=स्वतंत्र।

सत्ती=घोड़ा।

सणिअं=धीरे।

सणिद्धो=मित्र।

सयराहं=शीघ्र।

सवं=कान को।

साहसु=कहो।

साहेंति=कहते है।

सुंदेरं=सौन्दर्य।

सुणेत्ता=सुनकर।

सुदइवं=सद्भाग्य।

सुदायस्स=दहेज की।

हक्केइ=निषेध करता है।

हिअं=हृदय।

शुद्धिपत्र

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
८	०	मगलायरण	मंगलायरणं
१७	९	लद्धण	लद्धूण
३४	१	लद्धण	लद्धूण
३६	२०	बहुंल	बहुं
४६	३	सो	से
४६	१४	ण	अण
५०	६	भवणम्मि	भुवणम्मि
५२	२३	लवेज्जमं	लवेज्ज मं
५२	११	अज्जब्भिडेज्जा	अज्जागमेज्जा
६८	११	अब्भिडिओ	समागओ
७२	१७	लद्धण	लद्धूण
८२	३	य अब्भिडेज्जा	समागमेज्जा
८६	११	अब्भिडेइ	आगमेइ
८६	१९	र्तहि	ताहिं
८८	२४	विजेण	वि जेण
९०	५	णांअ	णाअ
९६	२०	अब्भिडेइ	आवच्चेइ
१०२	९	लद्धण	लद्धूण
१०६	१२	लद्धण	लद्धूण
१०६	२३	लद्धण	लद्धूण
१३६	५	जस्सि	जस्सिं
१३८	१२	लद्धण	लद्धूण
१४४	५	लद्धं	लद्धुं

लेखक परिचय

लेखक	:	मुनि विमलकुमार (तारानगर)
जन्म	:	वि.सं. २००२ भाद्रकृष्णा ६ (कलकत्ता)
दीक्षा	:	वि.सं. २०१७ केलवा (राजस्थान) में तेरापन्थ द्विशताब्दी के अवसर पर युगप्रधान आचार्य श्री तुलसी द्वारा।
शैक्षणिक योग्यता	:	योग्यतर (बी.ए. समकक्ष) तथा संस्कृत, प्राकृत, हिन्दी में विशेष अध्ययन।
यात्राएं	:	राजस्थान, उत्तरप्रदेश, मध्य प्रदेश, बिहार, उड़ीसा, आंध्र प्रदेश, महाराष्ट्र, गुजरात, हरियाणा, दिल्ली, पंजाब आदि प्रान्तों की।
प्रकाशित साहित्य	:	प्राकृत – पाइयसंगहो (सटिप्पण), पाइयपच्चूसो, पाइयपडिबिंबो हिन्दी – आगमिक और ऐतिहासिक कथाएं
संपादित साहित्य	:	वाक्य रचना बोध, आगम संपादन की समस्याएं
अप्रकाशित साहित्य	:	प्राकृत – थूलीभद्दचरियं, पियंकरकहा संस्कृत गजसुकुमाल चरित्रम्, भद्रचरित्रम्, प्रतिबोध काव्यम्।